ओ३म्

परिवार और समाज के नवनिर्माण का साहित्यिक मासिक

शांतिधर्मी

दीपावली अंक-2025

जो ना हटा मुख फेर बढ़ा जीवन भर आगे।
जिसका साहस हेर विघ्न भय संकट भागे।।
सबल सत्य की हार, अनृत की जीत न होगी।
ऐसे प्रबल विचार सहित विचरा जो योगी।।
उस दयानंद ऋषिराज का प्रकृत पाठ जनता पढ़े।
प्रभु शंकर आर्यसमाज का वैदिक बल गौरव बढ़े।।

कविवर नाथूराम शंकर शर्मा

प्रकाशन का 27वां वर्ष

₹20

Arvind Jindal (Annu)
92151-96809

Atul Jindal
90344-94810

M/s. Hindustan Steel & General Ind.

Opp. Happy Sr. Sec. School, Near Old Anaj Mandi, Jind

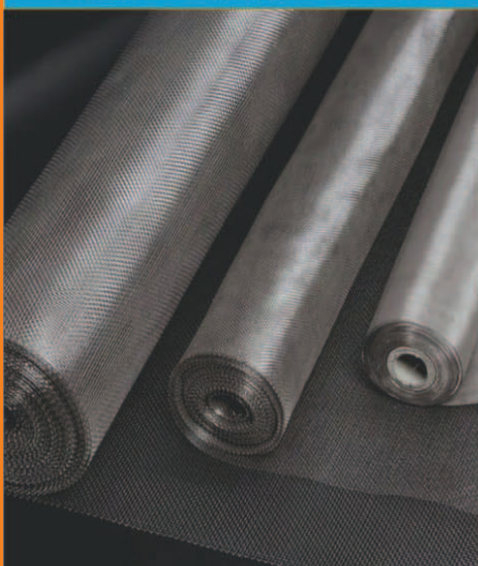

Avinash Jindal 92155-01520

M/s HR Steel

Manufacturing & Deals In :
S.S. G.I. Wire & Wire Mesh (Jali)

New Anaj Mandi, Raghu Nagar, Jind (Hr.)

Atul Jindal
90344-94810

NBSi

Ramdhan Goyal
97889-07100

New Bhagwati Steel Industries

Deals In : All Types of Partical Board
& Steel Almirah Furniture

Opp. New Anaj Mandi, Raghu Nagar, Rohtak Road, Jind

यशस्वी लेखक, सिद्धहस्त सम्पादक, ओजस्वी वक्ता

श्री पं. क्षितीश जी वेदालंकार

का सम्पूर्ण साहित्य संकलन प्रकाशित

1. **पं. क्षितीश वेदालंकार ग्रन्थावली- खण्ड-1, सिद्धान्त अंक**
   1. निज़ाम की जेल में, 2. आप्त राष्ट्रपुरुष, 3. दिव्य दयानन्द, 4. आर्यसमाज की विचारधारा, 5. ईश्वर संसार के प्रसिद्ध वैज्ञानिकों की दृष्टि में — पृष्ठ 569, मूल्य 500
2. **पं. क्षितीश वेदालंकार ग्रन्थावली- खण्ड-2, हिन्दी-हिन्दू, हिन्दुस्तान अंक**
   1. जातिभेद का अभिशाप, 2. हिन्दी ही क्यों ? 3. भारत को हिन्दू (आर्य) राष्ट्र घोषित करो, 4. कश्मीर : झुलसता स्वर्ग — पृष्ठ 474, मूल्य 500/-
3. **पं. क्षितीश वेदालंकार ग्रन्थावली- खण्ड-3, अभिनन्दन अंक**
   1. चयनिका, 2. राष्ट्रीय पत्रकारिता के पुरोधा — पृष्ठ 676, मूल्य 500/-
4. **पं. क्षितीश वेदालंकार ग्रन्थावली-खण्ड-4, यात्राएँ, उपन्यास एवं हास्य विनोद अंक**
   1. बांग्ला देश : स्वतंत्रता के बाद, 2. पंडिम के दुर्गम पथ पर, 3. उत्तराखण्ड के पथ पर, 4. स्वेतलाना, 5. गांधी जी का हास्य विनोद — पृष्ठ 440, मूल्य 500/-
5. **पं. क्षितीश वेदालंकार ग्रन्थावली-खण्ड-5, ललित साहित्य अंक**
   1. फिर इस अन्दाज से बहार आई, 2. ओ मेरे राजहंस, 3. देवता कुर्सी के — पृष्ठ 466, मूल्य 650-
6. **पं. क्षितीश वेदालंकार ग्रन्थावली- खण्ड-6, 'आर्य-जगत्' के अग्रलेख**
   1. हिन्द की चादर पर दाग, 2. राष्ट्रीय एकता की बुनियादें, 3. असलियत क्या है ? 4. क्षितीश जी के अन्य लेख — पृष्ठ 540, मूल्य 700/-
7. **पं. क्षितीश वेदालंकार ग्रन्थावली, खण्ड-7, राजनीति नहीं, राष्ट्रनीति** — पृष्ठ 584, मूल्य 700/-

पूरी ग्रंथावली एक साथ मँगाने पर 40 प्रतिशत छूट; साथ ही `तूफ़ान के दौर से पंजाब' की प्रति निःशुल्क

प्राप्ति स्थान :-

अरविन्द प्रकाशन® प्रा०लि०

स्पोर्ट्स कॉम्प्लैक्स एन्क्लेव, दिल्ली रोड, मेरठ-250002

फोन (0121) 2521607, 4002779, 9927070730

ई-मेल : info@arvindprakashan.com वेब : arvindprakashan.com

शाखाएँ :-

- ✦ शिवम यशोदालाल कॉम्पलैक्स, ट्रांसपोर्ट नगर, गेट नं० 2 के सामने, जकारियापुर, पी०एस०-रामकृष्ण नगर, पटना मो. 9334482533, 9430312773
- ✦ न्यू पान दरीबा, टी०बी० क्लीनिक के सामने, चौपला रोड, बरेली फोन : 0581-2452767, मो. 9927070729
- ✦ 87/223 ए, आचार्य नगर, कानपुर मो. 7895124848

प्राणिमात्र के कल्याण की वैदिक भावनाओं से अनुप्राणित

महर्षि दयानन्द निर्दिष्ट मुख्य उद्‌देश्य 'संसार का उपकार' के लिये पूर्ण समर्पित

परिवार और समाज के पुनर्निर्माण का साहित्यिक मासिक

आपका प्रिय

शान्तिधर्मी हिन्दी मासिक

शांतिधर्मी का सदस्यता/ग्राहकता सहयोग

प्रिय और सम्मानित पाठक! हम प्रत्येक अंक में सार्थक, सर्वोत्तम, विविधतापूर्ण, विचारपरक अध्ययन सामग्री देने का प्रयास करते हैं। हमने शांति धर्मी की पृष्ठ संख्या भी बढ़ा दी है। आप सब के आशीर्वाद से शांतिधर्मी का विस्तार हो रहा है। पर कुछ पाठकों को साधारण डाक से शांतिधर्मी नहीं प्राप्त हो पाता। इससे हमें भी कष्ट होता है और पाठक को भी असुविधा होती है।

इस समस्या से बचने के लिये पाठकों से निवेदन है कि वे अपनी प्रति पंजीकृत डाक से मंगवायें। पंजीकृत डाक से शांतिधर्मी का सदस्यता/ग्राहकता सहयोग इस प्रकार रहेगा–

एक वर्ष : 500 रुपये (रजिस्टर्ड डाक खर्च सहित)
पाँच वर्ष : 2100 रुपये (रजिस्टर्ड डाक खर्च सहित)

ध्यान दीजिये– हम आपसे एक वर्ष का केवल 200/ और 5 वर्ष का केवल 600/– ही ले रहे हैं। (12 अंकों का रजिस्टरी शुल्क पैकिंग सहित लगभग 336 रुपये बनता है।) क्योंकि हमारा उद्‌देश्य व्यवसाय नहीं, धर्म और राष्ट्रीयता का प्रचार है।)

❍ 10 या अधिक प्रतियाँ एक स्थान पर मंगाने पर 200/–वार्षिक के हिसाब से अग्रिम राशि भेजें। वाञ्छित प्रतियाँ हर मास पंजीकृत डाक से आपके पते पर भेजी जायेंगी। इस पैकेट का रजिस्टरी खर्च **हम वहन करेंगे**। यदि आप समर्थ हैं तो अपनी ओर से कम से कम दस प्रतियों का वितरण करके यह विद्या का दान अवश्य करें।

❍ **शिक्षण संस्थाएँ** वरिष्ठ बालकों या स्टॉफ में वितरण हेतु एक वर्ष तक 10 या अधिक प्रतियाँ पंजीकृत डाक से मँगायें।

❍ नई आजीवन सदस्यता हम बंद कर रहे हैं। 20 वर्ष तक पुराने सदस्य सदस्यता का नवीनीकरण अवश्य कराकर सहयोग करें।

❍ जिन आदरणीय पाठकों को उनकी प्रति साधारण डाक से मिल रही है, उनके लिये वार्षिक शुल्क 200/ ही है। **लेकिन वे कृपया पत्रिका न पहुंचने पर हमारे साथ अनावश्यक विवाद न करें। रजिस्टरी से भेजने पर हमारा श्रम और खर्च बढ़ता है तथापि हम चाहते हैं कि हमारे प्रिय पाठकों को पत्रिका नियमित रूप से प्राप्त हो।**

❍ ग्राहकता से संबंधित किसी भी जानकारी के लिये कृपया व्हाट्सएप या फोन करें–
094162 53826 भवदीय, **सम्पादक मण्डल**

शांतिधर्मी का ग्राहकता शुल्क जमा कराने के लिये स्कैन करें

साधारण डाक से : एक वर्ष 200/–
पंजीकृत डाक से : एक वर्ष : 500/–
पाँच वर्ष : 2100/–

कृपया राशि जमा कर अपना पता व्हाट्स एप करें– 9416253826

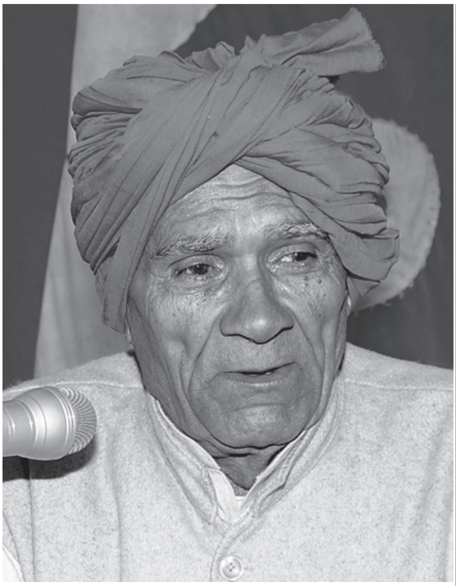

संस्थापक एवं आद्य सम्पादक

पं० चन्द्रभानु आर्य भजनोपदेशक (स्व०)

— — — — — — — —

●सम्पादक

सहदेव समर्पित

94162 53826, 99963 38552

●उपसम्पादक

सत्यसुधा शास्त्री

●विधि परामर्शक :

डॉ० नरेश सिहाग 'बोहल' एडवोकेट

●कार्यालय व्यवस्थापक

रवीन्द्रकुमार आर्य

सहयोग राशि

एक प्रति	:	२०.०० रु०
वार्षिक	:	२००.०० रु०
दस वर्ष	:	१५००.०० रु०

●सहयोग राशि खाते में जमा कराने के लिये 99963 38552 (व्हाट्स एप) पर सम्पर्क करें।

●उक्त सहयोग राशि में साधारण डाक खर्च सम्मिलित है। साधारण डाक से पत्रिका न मिलने पर हमारी कोई जिम्मेवारी नहीं है। यदि आप अपनी प्रति रजिस्टरी से मंगाना चाहते हैं तो एक वर्ष के लिये 300 रुपये अतिरिक्त जोड़कर भेजें।

ओ३म्

शं नो मित्रः शं वरुणः शं नो भवत्वर्यमा।

परिवार और समाज के नवनिर्माण का मासिक

शान्तिधर्मी

प्रकाशन का सताईसवाँ वर्ष

अक्तूबर-नवम्बर, २०२५ ई०

वर्ष २७, अंक : 9-10, कार्तिक-मार्गशीर्ष, 2082 विक्रमी

सृष्टि सम्वत् 1960853126, दयानन्दाब्द : 201

अन्तर्यात्रा

बाज घोंसले में (सामवेद अनुशीलन)	६
अनन्त का प्रतिनिधि (शांतिप्रवाह पुनर्प्रकाशन)	१०
तमसो मा ज्योतिर्गमय (पर्व)	१२
दीवाली में लोक संस्कृति तत्त्व (पर्व)	१४
हमारे मंगलकलश हैं वृद्ध (संस्कृति सन्दर्भ)	१७
कर्म की प्रेरणा का अवसर (पर्व)	१६
हे ईश्वर तेरी इच्छा पूर्ण हो- (ऋषि-बलिदान)	२१
राष्ट्र-चेतना के अग्रदूत दयानन्द (ऋषि-बलिदान)	२४
महर्षि के पत्रों का सन्देश (ऋषि-बलिदान)	२८
मर्यादा पुरुषोत्तम राम और रावण का दुष्चरित्र (रामकथा)	३१
विद्या के बिना सुख नहीं- (आओ वेद पढ़ें ७)	३४
छूआछूत विदेशी देन है (सामाजिक उन्नति)	३७
यह सब क्यों और किसके लिये (आत्मिक चिन्तन)	४३
क्रांतिकारियों की दुर्गा भाभी (पुण्य-स्मरण)	४५
सेठ रामदास जी गुड़ वाले (१८५७ के बलिदानी)	४६
राष्ट्रीय कर्त्तव्य (इतिहास कथा खारवेल)	४७
आयुर्वेद में तिल के प्रयोग (स्वास्थ्य चर्चा)	४६
समाचार सूचनाएं व सभी स्थायी स्तम्भ	४३

कार्यालय :

सम्पादक शांतिधर्मी, **पो बाक्स नं० 19**

मुख्य डाकघर जींद 126102

७५६/३, आदर्श नगर, सुभाष चौक, जीन्द–१२६१०२ (हरि०)

दूरभाष : 9996338552

ईमेल- **shantidharmijind@gmail.com**

पूर्ण सम्पादक मण्डल अवैतनिक है। पत्रिका में व्यक्त लेखकों के विचारों से सम्पादक मण्डल का सहमत होना अनिवार्य नहीं है। किसी भी प्रकार के विवाद का न्याय क्षेत्र जीन्द होगा।

आत्म-चिन्तन

प्रकाश के उपासक!

❑सहदेव समर्पित

पर्व समाज को जोड़ते हैं, आज हम पर्व तो पहले से ज्यादा भव्यता के साथ मना रहे हैं, लेकिन मनुष्य समाज का विखण्डन बढ़ता ही जा रहा है। एक दीप जले तो भी प्रकाश प्रकट होता है, जब अनेक दीप जलते हैं तब भी वह प्रकाश ही रहता है-हाँ, उसका स्वरूप विस्तृत, व्यापक हो जाता है। प्रकाश तो है ही व्यापक और विस्तृत। संकुचित तो अंधकार होता है। आज मनुष्य अंधकार से घिरा है। वह अपने दायरे छोटे----और छोटे करता जा रहा है। उसकी आकांक्षाएँ अन्ततः निज पर आकर केन्द्रित हो जाती हैं। मनुष्य स्वहित चाहता है, लेकिन वह स्वहित करता नहीं है। वह समाज के सर्वहितकारी नियम को तोड़ता है-तो वह स्वयं ही फन्दे में फंस जाता है। मनुष्य और समाज के सम्बंध सहज स्वाभाविक हैं। जब मनुष्य इसमें कोई व्यवधान पैदा करता है तो उसकी प्रतिक्रिया तुरन्त होती है। जब वह सर्वहित का ध्यान रखते हुए स्वहित करता है तो उसके स्वहित और सर्वहित दोनों हो जाते हैं, लेकिन जब वह स्वहित के लिए सर्वहित का उल्लंघन करता है तो उसका हित नहीं हो सकता।

मनुष्य की सोच संकुचित होने का कारण यह है कि वह प्रकाश की उपासना छोड़कर अंधकार का गुलाम बन गया है। उसकी दृष्टि विस्तार को नहीं देखती। जब हम प्रभु प्रदत्त दृष्टि से इस सृष्टि को देखते हैं तो सब कुछ अपना ही अपना दिखाई देता है। जब हम सृष्टि के रचयिता की शरण में बैठकर उसकी रचना और पालन प्रक्रिया को देखेंगे तो अन्दर बाहर आलोकित हो उठेंगे। जिस दिन हम प्रभु की आराधना को औपचारिकता समझना छोड़ देंगें- उस भक्ति को, उस उपासना को आत्मसात् करने लगेंगे; जब हमारी भक्ति मन्दिरों की टालियों, मस्जिदों की अजानों के बन्धन से छूटकर हमारे हृदय में समा जाएगी, तब हम अपने आप को इस संसार का अंग समझने लगेंगे और इस संसार को अपना शरीर। जब हमारी भक्ति हमारे व्यवहार में झलकेगी तभी हम सही अर्थों में आस्तिक व धार्मिक बन पाएँगे।

आस्तिकता मानव की एक स्वाभाविक प्रवृत्ति है लेकिन आज आस्तिकता मात्र एक ढोंग बनती जा रही है। आस्तिक वास्तव में वह है जिसे परमात्मा की न्याय व्यवस्था पर विश्वास है। ऐसा व्यक्ति न तो पाप माफकरने की प्रार्थना कर सकता और न धार्मिक होने का ढोंग कर सकता है। जो सच्चे अर्थों में धार्मिक है उसके अन्दर पक्षपात की भावना नहीं आ सकती। जो संन्ध्या करता है उसमें द्वेष की भावना रह ही नहीं सकती।

लेकिन आस्तिकता की परिभाषा को भी रेखाकिंत करने की जरूरत है। ईश्वर में विश्वास का तात्पर्य है ईश्वर की व्यवस्था में विश्वास। ऋषियों ने तो ज्ञान की निन्दा करने वाले को नास्तिक कहा है ''नास्तिको वेदनिन्दकः'' ज्ञान से विपरीत आचरण करने वाला नास्तिक है। आज संसार में स्वयं को आस्तिक कहने वाले ज्यादातर लोग नास्तिक नजर आते हैं। जो ईश्वर-ईश्वर तो करते हैं, परन्तु ईश्वर के ज्ञान का आचरण नहीं करते। अहिंसा परमो धर्मः कहने वाले मूक प्राणियों को मारकर खाते हैं। सत्यमेव जयते कहने वालों के जीवन में असत्य का आधिपत्य है। योग का नारा लगाने वाले भोग में लिप्त हैं। कथनी और करनी में दिन रात का अन्तर है-यह अन्धकार की उपासना है।

जिस दिन हम कथनी और कथनी की एक रूपता को स्थापित कर पाएँगे-उस दिन संकुचित वृत्ति समाप्त हो जाएगी। जब हम सर्वशक्तिमान प्रभु की शरण में जाएँगे- तब विस्तार पा जाएँगे। तभी वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना को आत्मसात् कर सकते हैं और इसका तात्पर्य समझ सकते हैं। जब हम परिवार में तो मिलकर बैठ नहीं सकते और सारे संसार को एक करने का नारा लगाते हैं तो इससे ज्यादा धोखा क्या होगा।

यह प्रकाश का पर्व बार-बार आता है हमें सचेत करने के लिए-

ओ अनन्त प्रकाश के उपासक! अब बहुत हो चुका। अब तो यह अन्धकार की लड़ाई जीतनी ही होगी। मिट्टी का दीपक जलाते-जलाते युग व्यतीत हो गए। अब तो अन्तर्मन की ज्योति जगानी होगी। तभी प्रकाश पर्व की सार्थकता सिद्ध होगी।

आपकी सम्मतियाँ

पुरुषार्थ के वटवृक्ष आचार्य सहदेव जी तथा उनकी सम्मानित टीम को मेरा वंदन। अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका शांतिधर्मी का सितंबर 2025 अंक मिला। समर्पित जी ने आत्म चिंतन के अंतर्गत बताया कि चरित्र निर्माण ही वास्तव में किसी राष्ट्र का आधार होता है। एक दृष्टांत में समर्पित जी ने शिवाजी महाराज की नारी के प्रति असीम श्रद्धा भावना को दर्शाया है, यही भारतीय संस्कृति का अलंकरण है, जो भारतीय संस्कृति को विश्व में शिरोमणि होने का गौरव प्रदान करता है। स्व. पंडित चंद्रभानु जी 'अपनी भाषा' के अंतर्गत बताते हैं कि संसार की सभी भाषाओं की जननी संस्कृत से ही हिंदी का विकास हुआ है। सेवा सिंह वर्मा के प्रेरक वचन बहुत ही ज्ञानवर्धक लगे। आर्य संस्कृति के अंतर्गत मुंशी राम शर्मा ने बताया कि विश्व में सुख-शांति वेदों की देन है। महिपाल आर्य का 'धर्म के पिता पुत्र सेठ छाजूराम व चौधरी छोटू राम' बहुत ही ज्ञानवर्धक लगा। आर्य सागर का लेख 'अलबेले अमर बलिदानी राष्ट्रपुत्र भगत सिंह' बहुत ही ज्ञानवर्धक लगा और शांतिधर्मी ने सितंबर के इस अंक को भगत सिंह को ही समर्पित कर दिया। आत्मिक उन्नति के अंतर्गत 'कृतज्ञता का संबंल' रजनीश जैन का बहुत ही उत्कृष्ट लेख रहा। डॉ. नरेश सिहाग बोहल एडवोकेट की 'हक मांगा जब दीवारों ने' की बहुत उच्च कोटि की समीक्षा थी। जानते हो, हास्यम्, प्रहेलिका:, विचार-वाटिका आदि सभी कालम इस पत्रिका के शारीरिक आधार हैं जो एक गौरवशाली समाज का निर्माण करते हैं। जय हिंद-जय हिंदी।

प्रा. सतीश कुमार नारनौंद 8295960700
नारनौंद, जिला हिसार-125039

✉ 📄 ✉

नमस्ते सहदेव जी, नया अंक ईमेल से मिला। धन्यवाद। अच्छा अंक है। आपका संपादकीय और भगत सिंह पर लेख अच्छे लगे।

डॉ. शील आदित्य (सु. स्व. पं. क्षितीश जी वेदालंकार)

✉ 📄 ✉

सितंबर, 2025 अंक मिला। मुख्य पृष्ठ पर हुतात्मा भगत सिंह तथा उनके दादा तथा पिताजी के चित्र देश भक्ति तथा त्याग के लिए प्रेरणा देने वाले हैं। आत्म-चिंतन में संपादकीय 'चरित्र की शिक्षा' महत्त्वपूर्ण है। चरित्र के कारण ही हमें विश्व गुरु कहा जाता है। वैसे भी कहावत है कि अगर धन खो जाता है तो कुछ नहीं खोता, अगर स्वास्थ्य खो जाता है तो कुछ हद तक कुछ खो जाता है परंतु अगर चरित्र खो जाता है तो सब कुछ खो जाता है। बेहतरीन संपादकीय के लिए हार्दिक बधाई और बहुत सारी शुभकामनाएं। डॉ. सुरेश प्रकाश शुक्ल की रचना अच्छी लगी। स्व. पं. चंद्रभानु आर्य का लेख 'अपनी भाषा' मातृभाषा हिंदी तथा संस्कृत को बढ़ावा देने का सुझाव देता है। सेवा सिंह वर्मा के प्रेरक वचन बहुत अच्छे लगे! स्व. पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय का लेख धर्म को बढ़ावा देने के लिए आवश्यक साधनों तथा तरीकों के अभाव पर व्यथा प्रकट करता है। श्री मुंशीराम शर्मा का लेख 'आर्य संस्कृति' बेहतरीन है। कर्मवीर आर्य, आर्य सागर खारी, आचार्य सुरेश चंद्र शास्त्री की रचनायें पसन्द आईं। रजनीश जैन का लेख 'कृतज्ञता का संबंल' जीवन में विनम्रता का महत्त्व बताता है। रचना... पुण्य कार्य तत्काल करने चाहिए.. प्रेरणादायक लगी। डॉक्टर मनोहर दास अग्रावत का लेख 'सब्जी बाग का राजा आलू' सारा साल उपलब्ध होने वाली सब्जी की विशेषता तथा महत्त्व का वर्णन करता है।

बाल वाटिका बच्चों और बड़ों के लिए ज्ञानवर्धक, मनोरंजन प्रेरक है। पत्रिका के इस अंक की अन्य रचनाएं रोचक तथा जानकारी बढ़ाने वाली रही।

प्रोफेसर शाम लाल कौशल
मोबाइल-9416359045
रोहतक-124001 (हरियाणा)

✉ 📄 ✉

अपनी परंपरा अनुसार शानदार कलेवर में व्यवस्थित कालम के साथ उत्तम पठनीय सामग्री प्रस्तुत करता शांतिधर्मी का डिजिटल संस्करण प्राप्त हुआ, धन्यवाद। 'नियम सृष्टि का चले' 'जिंदगी है यह तो कट जायेगी' 'निष्काम कर्म योग कर' 'पुण्य कार्य तत्काल करना चाहिए', 'मांस खाने से कोलोरेक्टल कैंसर' सत्य प्रतिपादित करती रचनायें हैं। 'बिंदु

पाठक अपनी सम्मति, सुझाव, सूचनाएँ
व्हाट्सएप- 9996338552, 9416253826
पर भेज सकते हैं।

बिंदु विचार' 'प्रेरणा पथ' 'प्रेरक वचन' समस्त पाठकों को पढ़कर जीवन में उतारना चाहिए, रचनाकारों को बहुत-बहुत साधुवाद। सामवेद के पावमान पर्व पर पं. चमूपति की शानदार व्याख्या है।

आचार्य रामफल आर्य का 'मंत्र का देवता' सुंदर व्याख्या, 'वेद सांप्रदायिकता नहीं' 'आर्य संस्कृति' सभी रचनाएं वेद सम्मत व पठनीय हैं। हिंदू धर्म में उसके सौंदर्य के शिक्षण की व्यवस्था नहीं, वेद संस्कृति एवं धर्म के प्रति घटती निष्ठा एवं षड्यंत्र से व्यथित रचना जो उचित मार्गदर्शन करती है। बुढ़ापे का शोक, मितव्ययिता की मिसाल प्रेरक कथायें हैं। क्या, कौन, कैसा है ईश्वर- शंका समाधान करती सार्वभौमिक रचना। अपनी भाषा हिंदी हैदराबाद स्टेट में हिंदी की स्थिति उर्दू के साथ हिंदी संघर्ष की गाथा है। अमर राष्ट्र सेवक महाशय भरत सिंह, महाशय हीरालाल आर्य, बलिदानी राष्ट्रपुत्र भगत सिंह, सेठ छाजू राम व चौधरी छोटू राम सम्बंधी रचनायें मनन करने योग्य हैं। जंगल और शहर के भेड़िये- बदलते समय की सामाजिक एवं मानसिकता का सुंदर व्यंगात्मक चित्रण है। डॉक्टर लोग-- आज की स्थिति में व्यंग्यात्मक विवेचन है। आभार ऐसी शक्ति है जो हमारे जीवन को हर स्तर पर समृद्ध करती है। श्री रजनीश जैन का लेख उसके महत्व को प्रतिपादित करता है। नारी स्वतंत्रता के नाम पर चरित्रहीन लोगों ने नारी को मात्र भोग्य बना दिया, कह कर तेज धार से कटाक्ष करते हुए भारतीय संस्कृति अनुरूप चरित्र गठन का उद्देश्य प्रतिपादक करता 'चरित्र की शिक्षा' पठनीय ही नहीं, अपितु जीवन में उतारने लायक आलेख है।

डॉ. विजय कुमार पाठक (9407169323)
जी 93, एल आई जी, ऋषि नगर, उज्जैन (म. प्र.)

अपना सुरक्षा-कवच यज्ञ है

वायुमंडल शुद्ध हवा का जिससे देते सुविधा अनुपम।
वेद सुरक्षित रखने का भी कार्य सरल होते सर्वोत्तम।।
निर्बल अनाथ दीन दुःखी असहाय
निराश्रित जिससे सुख पाते।
वह सत्कर्म भोजन वस्त्र औषधि
तज्जन्य सहयोग हैं यज्ञ कहाते।।
अपना सुरक्षा कवच यज्ञ है अग्नि की साक्षी है माध्यम।।
अपनी ही उन्नति से संतुष्ट न रहना
त्याग भाव से खुद जीना जीने भी देना।
बुरे काम का बुरा नतीजा प्रभु देख रहा तू बचके रहना।।
प्रातः सायं प्रभु मिलन का चलो बना लें सरल नियम।।
स्विष्ट मिष्ट आरोग्य प्रदायक जिससे होवे अग्नि प्रज्वलित।
गौघृत कस्तूरी केसर पुष्प अन्न
वनौषधि होते सम्मिलित सुगन्धित।
वसुधा सारी दिग्दिगंत संग जिससे हो पाता है सक्षम।।
सांस सांस भरकर दीर्घायु स्वच्छ हृदय में
प्रातः सायं हम प्रसन्न हो अवसर पाते, ऋषि समझाते।।
स्वर्ग कामो यजेत् वेद बतलाते।।
मात-पिता की सेवा शुश्रूषा का हम
दायित्व स्वेच्छा से निभाते।
सुख का देने हारा है पंचतत्व संस्कार प्रथम।।

●**सत्यदेव प्रसाद आर्य मरुत्**
आर्य समाज मन्दिर, नेमदारगंज, नवादा-805121

किरदार संभाले कोई

दिल संभाले या कि दस्तार संभाले कोई।
प्यार देखे या कि संसार संभाले कोई।।

हाथ से रेत की मानिंद रहा है ये फिसल
कैसे इस वक्त की रफ्तार संभाले कोई।।

ये महल प्यार का खंडर ही न हो जाय कहीं
गिर रहे हैं दरो दीवार संभाले कोई।।

सिर्फ सौदा है तिजारत है हरिक रिश्ता अब
बन गया घर में ही बाजार संभाले कोई।।

कोई तो है जो संभाले है मुझे तूफां में
चल रहा है मेरी पतवार संभाले कोई।।

पूछ ले हाल कभी आ के वो मेरे दिल का
एक मुद्दत से है बीमार संभाले कोई।।

'पुष्प' औरों को नसीहत दे कोई तो पहले
आप अपना भी तो किरदार संभाले कोई।।

●**पुष्पलता आर्य,**
चरखी दादरी (9416918577)

द्वितीय सवन वीर तरंग (नवमः खण्डः) जगती छन्दः । निषादः स्वरः॥

व्याख्याकार :
पण्डित चमूपति जी

बाज घोंसले में

असावि सोमो अरुषो वृषा हरी राजेव दस्मो अभिगा अचिक्रदत्।
पुनानो वारमत्येष्यव्ययं श्येनो न योनिं घृतवन्तमासदत्॥१॥

ऋषि : भारद्वाजः =उपदेशक

(हरिः) चित-चोर (अरुषः) चमकीला (सोमः) संजीवन-तत्त्व (वृषा) तेज बरसाता हुआ (असावि) प्रकट हुआ है। (राजा इव दस्मः) वह राजा की तरह दर्शनीय है। (गाः अभि अचिक्रदत्) प्रजाओं को चारों ओर से पुकार रहा है। (पुनानः) पवित्रता के प्रवाह में [ऐ सोम!] तू (अव्ययं वारम्) विकार-रहित रोमांच की चलनी से छन कर (अति-एषि) बाहर आता है। ऐसा प्रतीत होता है (श्येनः न) जैसे बाज (घृतवंतम्) स्नेह-संपन्न (योनिम् असदत्) घोंसले में आ जाय।

दिन के उदय होते ही एक अत्यन्त मनोहर अरुणाई चारों ओर छा रही है। वृक्षों के हरे-हरे पत्ते लाल-लाल आभा से घिर रहे हैं। पानी के तल पर एक चमकीली लाल चादर-सी बिछ रही है। आकाश में बदलियाँ मँडरा रही हैं। कोई श्वेत है, कोई श्याम, परन्तु प्रत्येक ने एक हल्का-सा गुलाबी आँचल ओढ़ लिया है। छहों दिशाओं में छिपा-2 कोई लालिमाप्रिय प्रियतम हलकी-2 झाँकी दे रहा है। कौन ऐसा भावुक हृदय है, जिसे इन हलकी झाँकियों ने मुग्ध न कर लिया हो? ऊपर नीचे तेज बरस रहा है-दिलों को हरने वाला तेज बरस रहा है!

यह तेज सृष्टि के राजा सोम का है। उषा की गोदी में सूर्य ने जन्म लिया। उस का अरुण वर्ण दिग्दिगन्त में प्रतिभासित हुआ। देखना! शिशु-सूर्य वाचाल हो बोल रहा है, गरज रहा है। किरणों को संबोधन कर कोई दिव्य आदेश दे रहा है। इस पुण्य प्रभात में उद्‌बुद्ध हुई प्रजाओं को प्रकाश के राजा का यह स्नेह-पूर्ण सन्देश है-**योऽ सावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम्।** प्रभु अपनी रस-पूर्ण प्रकाश की भाषा में कह रहे हैं-सूर्य का आत्मा मैं हूँ। चारों ओर छा रही इस लालिमा का 'लाल' मैं हूँ।

उषा की गोदी में बाल-भानु को प्रकाश की बोली बोलते देख किसे रोमांच नहीं हो आता? एक मनुष्य क्या? सारी सृष्टि रोमांचित हो रही है। वृक्ष-वृक्ष के, पौधे-पौधे के, तिनके-तिनके के बाल खड़े हो रहे हैं। एक प्रेम का, पवित्रता का अगाध प्रवाह है जो सारे जगत् में बह रहा है।

संसार नागरिक बन रहा है। इसमें सहयोग है, स्नेह है। प्राकृतिक शक्तियाँ उद्‌दण्ड हैं, अदम्य हैं। वे एक दूसरे से लड़ क्यों नहीं पड़तीं? आपस में लड़-लड़ा कर विनष्ट क्यों नहीं हो जातीं? यह तारा-मण्डल, यह सूर्य, यह ग्रह-उपग्रह किस सुन्दरता से इस इन्द्र के घर को सजाए हुए हैं? किस अचूक व्यवस्था से ये एक दूसरे के पीछे चल रहे हैं? इन्हें व्यूह-रचना का यह अद्‌भुत नियम किस ने सिखाया है? हवाएँ चलती हैं, नहरें बहती हैं। किरणें तीर बन-बन कर प्रहार करती हैं। प्रतीत ऐसा होता है कि ये अभी संसार का विनाश कर देंगी। पर इन की संयुक्त क्रियाओं से खेती उग आती है, वृक्ष सिर उठा कर खड़े हो जाते हैं, संसार में हरियाली ही हरियाली छा जाती है। जंगल में मंगल हो जाता है। जो शक्तियाँ देखने से हिंस्र पशु-सी प्रतीत होती थीं, वे अत्यन्त सभ्य हैं। उन्हीं के द्वारा संसार में स्वास्थ्य है, सब प्रकार का सुख है, सुभीता है। सारा जगत् एक अपूर्व ज्योति से जगमगा रहा है। बाज घोंसले में आ गये हैं-स्नेहपूर्ण घोंसले में। बघियाड़ घरेलू जानवर बन रहे हैं। उन्हें बकरियों से प्यार है। शेर-बकरी एक घाट पानी पी रहे हैं।

यह किस राजा के अटूट न्याय-नियम की करामात है? उसी 'दर्शनीय' प्रभु की जो आदित्य के मुख से प्रातः काल की लालिमा में बोल रहा था। उसी का दिव्य आदेश इस चित-चोर अरुणाई के रूप में छहों दिशाओं को चुपके-चुपके व्याप्त कर रहा है। बाजों को चिड़ियों का रक्षक उसी आदेश ने बनाया है। प्रकृति की उच्छृंखल शक्तियों के पैर में शृंखलाएँ उसी ने पहनाई हैं। जंगल उसी के स्नेह रस से मंगलमय गृह बन रहे हैं। विश्व की विशाल बस्ती उसी अरुण-वर्ण सोम का परिवार है- किरणों के मुख से बोल रहे स्रष्टा का घर-बार है।

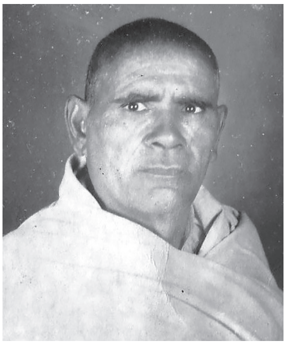

शान्तिप्रवाह (पुनर्प्रकाशन)

फरवरी 1999 ई. से दिसम्बर 2014 तक के सम्पादकीय अग्रलेख

❑स्व. पं. चन्द्रभानु आर्य भजनोपदेशक
संस्थापक एवं आदि सम्पादक शान्तिधर्मी

अनन्त का प्रतिनिधि

दीपावली पर राम को याद करते समय राम की मर्यादा का पाठ पढ़ लें, गुरु की रिहाई का स्मरण करते समय गुरुओं के त्याग और बलिदान का एक अंश ही आत्मसात् करलें-- दयानन्द का निर्वाण दिवस मनाएँ तो उनके तप, ब्रह्मचर्य, सत्यनिष्ठा और सर्व के कल्याण की तड़प को समझ लें- महावीर को याद करें तो दूसरों के दर्द में रोना सीख लें, तो यह दीवाली सार्थक हो जाये।

प्रकाश-पुंज एक बार फिर अंधकार के साम्राज्य को छिन्न-भिन्न करने को उद्यत है। दीपकों की पंक्तियाँ एक सतत् संघर्ष की प्रेरणा देती हैं- कि यह कोई प्रश्न नहीं है कि तुम्हारी क्षमता कितनी है? यह भी कोई चिन्ता नहीं कि तुझ अकेले अदने से दीपक के जलने से कितना अंधकार मिटेगा? प्रश्न केवल यह है कि तुझे अपने दायित्त्व की पूर्त्ति करनी है। तुझे केवल पूर्वजों के बनाए हुए, दिखाए हुए श्रेष्ठ मार्गों की रक्षा करनी है। (ज्योतिष्मत: पथो रक्ष धिया कृतान्) और यह कार्य अपने आप को मिटाकर करना है। अपने अस्तित्त्व को समग्र के अस्तित्त्व में समाहित करके करना है।

प्रकाश के परिवर्द्धन व संरक्षण का दायित्त्व अपने आप को समग्रता में समाहित किए बिना नहीं हो सकता- यह दीवाली का प्रथम संदेश है।

समग्रता एक अनन्त दृष्टि है, जिसमें साधक अकेला होते हुए भी अकेला नहीं है। अनन्त से जुड़कर उसकी शक्ति भी अनन्त हो जाती है- फिर वह किसी कोने में तड़पता-सिसकता दीपक मात्र नहीं है, फिर वह अनन्त का प्रतिनिधि है।

फिर वह संसार की उस व्यवस्था का अंग है जिसमें सब कुछ दूसरों के लिए होता है, और अपने लिए स्वयमेव होता चला जाता है। जितना वह औरों का उत्थान करना चाहता है, उतना-उतना उसका उत्थान होता चला जाता है।

हमारे पूर्वजों ने बहुत सोच समझकर बुद्धिमानों के बनाए हुए श्रेष्ठ मार्गों की रक्षा के लिए परम्पराओं को पर्वों से जोड़ा है। 'इष्टि' एक बड़ा सुन्दर शब्द है-इष्ट का अर्थ है इच्छित-जो चाहिए, जिसकी आवश्यकता है- और इष्टि का अर्थ है हवन। जो चाहिए, जिसकी आवश्यकता है, उसे दे डालो, उसे बांट डालो। इसलिए इस पर्व के साथ उस दायित्त्व को जोड़ दिया- और इसका नाम दिया- नवशस्येष्टि। नव शस्य, जो तुमने प्राप्त किया-उसे बांट डालो-उसे तेरे मेरे के संकुचित दायरे में बांधकर समाप्त मत करो- उसको हम सब का बनाकर विस्तार दे डालो। उसका कुछ अंश जड़-चेतन देवों को बांटने के लिए अग्निदेव को दे दो। अग्निदेव उसे हजारों गुणा करके बांट देगा।

हवन करने का अर्थ है- किसी भी वस्तु का सर्वोत्तम उपयोग करना। सुकरात ने एक स्थान पर कहा है- 'आलसी केवल वह नहीं है, जो कुछ काम नहीं करता, आलसी वह भी है कि जो वह कर रहा है, उसकी क्षमताओं से कम कर रहा है, वह जबकि उससे उत्कृष्ट कर सकता है।' बांटने की संपूर्णता यह है कि बांटना हजारों गुणा प्राप्त करना हो जाए। इतना बांट कि सृष्टि का कण-कण तृप्त हो जाए। यहाँ संख्या और परिमाण की नहीं, समर्पण की गणना होती है। इस परम्परा को--

इस पद्धति को मत तोड़। यह व्यवस्था टूटेगी तो सब कुछ अस्त-व्यस्त हो जाएगा। स्मरण कर--चिन्तन कर कि--तुझे भी बांटा हुआ ही मिल रहा है। इसलिए यह पर्व 'इष्टि' पर्व है। इच्छाओं को पूरा करने वाला पर्व है-स्वाहाकृत आहुतियों का पर्व है- जिसमें आह्वान भी है और समर्पण भी।

पूजा के भी यही अर्थ हैं- सर्वश्रेष्ठ-समग्रता से उपयोग। साधक! तू लक्ष्मी की पूजा करता है। तेरे अन्तर में इतनी श्रद्धा है कि तूने उसे देवी का रूप दे दिया। लेकिन तूने पूजा को मात्र औपचारिकता समझ लिया। तूने लक्ष्मी को देवी का रूप तो दे दिया-लेकिन उसे स्वार्थ और अहंकार के पिंजरे में बंद कर लिया। तूने उसे बांटना बंद कर दिया। तुम घर के प्रत्येक कोने में दीपक रखते हो। अंधेरी नाली में भी-कि यहाँ से लक्ष्मी आएगी। यह सत्य है कि लक्ष्मी वहीं से आएगी। जब इस संसार रूपी परिवार का प्रत्येक कोना-सबसे निर्धन-अकिंचन-भी प्रकाशित हो उठेगा, तभी लक्ष्मी आएगी--केवल महलों के कंगूरे सजाने से लक्ष्मी नहीं आएगी। तूने लक्ष्मी की पूजा नहीं की साधक! तूने लक्ष्मी का अपमान किया है। तभी तू सब कुछ होते हुए भी वंचित है। तू संतुष्ट नहीं है। तेरे घर की लक्ष्मी, तेरे अंगने की किलकारियाँ-- जन्म लेने से पहले ही किसी कचरे के ढ़ेर में-या गटर में सड़ रही हैं। भ्रूण हत्या से सृष्टि कंपित हो रही है। तेरी गृहलक्ष्मियाँ--चीख रहीं हैं-मर रही हैं--बलात्कार से- अपहरण से- दहेज से--। लक्ष्मी पूजक! क्या तेरा हृदय नहीं दहलता!

राम और कृष्ण को अपना आदर्श मानने वाले, तूने उन्हें भगवान् बनाकर मन्दिर में बंद कर दिया, ताकि उनके आदर्शों को अपनाने का झंझट ही न रहे। कहीं नहाने का वर्णन हो रहा है-- कहीं वस्त्र उठाकर भागने का। कहीं रामलीला हो रही है और कहीं रासलीला। कहीं जागरण हो रहे हैं और कहीं प्राण प्रतिष्ठा। राम और कृष्ण का चरित्र कहाँ है- पूजा कहाँ है? शिव की आराधना कहाँ है? वह सब लुप्त होता जा रहा है और तुम समझ रहे हो कि हम भक्ति कर रहे हैं!

दीपावली पर राम को याद करते समय राम की मर्यादा का पाठ पढ़ लें, गुरु की रिहाई का स्मरण करते समय गुरुओं के त्याग और बलिदान का एक अंश ही आत्मसात् करलें-- दयानन्द का निर्वाण दिवस मनाएँ तो उनके तप, ब्रह्मचर्य, सत्यनिष्ठा और सर्व के कल्याण की तड़प को समझ लें- महावीर को याद करें तो दूसरों के दर्द में रोना सीख लें। यदि नहीं तो यह दीवाली तो फिर आएगी- हर वर्ष- एक छोटे से दीपक को लेकर-जो अपनी समग्र शक्ति से संसार के अज्ञान और अंधकार से लड़ने की सतत प्रेरणा दे रहा है।

ऋषिवर चला अकेला।।

सारी दुनिया एक तरफ जब ऋषिवर चला अकेला।
जीवन की पूर्णाहुति में चेली थी ना चेला।।
सच्चे शिव को पाने का संकल्प हृदय में धारा।
खोज करेंगे कैसे हो मृत्यु पर विजय हमारा।
व्रत हो पूर्ण इसी खातिर छोड़ा जंजाल झमेला।।1।।
कंटक पथ पर चलते-चलते सच्चे गुरु को पाया।
विरजानन्द गुरु ज्ञानी की विद्या जग को समझाया।
शास्त्रार्थ के महासमर का शुरू हो गया खेला।।2।।
हरिद्वार पाखंड खंडनी ध्वज फर फर फहराया।
शास्त्रार्थ की खुली चुनौती पाखंडी घबराया।
दयानंद के दिव्य ज्ञान से गूंजा कुंभ का मेला।।3।।
काशी के गढ़ को उसके घर में जाकर ललकारा।
धर्माधिकारी हो गये त्रस्त मच गया वहां हरकारा।
धर्म के लक्षण बता न पाये ऋषि ने ऐसा रेला।।4।।
सागर तट पर पावन पावक आर्यसमाज बनाया।
लौट चलो वेदों की ओर जग को उसने समझाया।
फैंका था शत्रु ने ऋषिवर पर सांप किसी ने ढेला।।5।।
जगा दिया आर्यों को 'संजय' दे सत्यार्थ प्रकाश।
मुरझाया था धर्म बगीचा फैल गया उल्लास।
मानवता हित दयानंद पग पग पर संकट झेला।।6।।
अंत समय में गुरुदत्त जी को ईश्वर भक्त बनाया।
अस्ताचल गामी सूरज ने दूजा सूर्य उगाया।।
जय जय आर्य समाज की, जय दयानंद जग बोला।।7।।

●**आचार्य संजय सत्यार्थी,** आर्योपदेशक,
पटना, बिहार (संपर्क सूत्र-7717766151)

ऋषि निर्वाण : एक शब्द चित्र

●हरिकृष्ण आर्य, चौखण्डी ग्राम

तमसो मा ज्योतिर्गमय

सूर्यदेव अस्ताचल की ओर जा रहे हैं। जीवन का एक और बहुमूल्य दिन बीत गया। अब तो संन्ध्या ही शेष है और संन्ध्या के बाद गहरी अंधेरी रात! जैसे जैसे रात का अंधेरा बढ़ रहा है, वैसे वैसे ही शरीर की पीड़ा का दु:ख भी असह्य होता जा रहा है। अंधेरा स्वभाव से धीरे धीरे बढ़ता जाता है और सारी दुनिया पर ही छा जाता है, ठीक इसी प्रकार घोर निराशा का भाव भी बढ़ता जाता है। रोग ने केवल बाहर से नहीं, मानो अन्दर से भी सारे शरीर को जकड़ लिया है।

पूछने पर एक सहायक ने बोध कराया कि आज कार्तिक मास में कृष्ण पक्ष की अमावस्या है। ओह! अंधकार की पराकाष्ठा ने शरीर की पीड़ा की पराकाष्ठा को जन्म दे दिया है। मानो वेद विद्या का महान् सूर्य भी आज उस तृतीय लोक में जाने को आतुर हो, जहाँ सांसारिक दु:ख से रहित, नित्य आनन्दयुक्त मोक्षस्वरूप धारण करने हारे परमात्मा में मोक्ष को प्राप्त होके विद्वान् देव लोग स्वेच्छापूर्वक विचरते हैं। मानो सूर्य अपने आप को एक छोटे से मिट्टी के दीये के रूप में परिवर्तित करना चाह रहा हो। ताकि वह दीया आगे आने वाले समय में स्वयं ही नहीं बल्कि लाखों सहस्रों दीयों को ज्योतिर्मय कर अविद्या अंधकार को सदा सदा के लिए इस धराधाम से दूर करदे। निश्चित ही उस रात उस दीये के बलिदान से लाखों सहस्रों दीये प्रज्वलित हो गए और प्रतिवर्ष होते रहेंगे, जिससे कि अमावस्या सा अविद्या का घोर अंधकार कहीं टिक न सकेगा।

मनुष्य का जीवन भी तो एक दीये के समान ही है। उसमें मिट्टी भी है, तेल भी और जोत भी। मानो यह जड़ और चेतन का एक अद्भुत संगम ही है। हमारा शरीर मिट्टी का दीया है, उसमें प्रभु प्रदत्त प्राण तेल के समान है, लौ (अग्नि शिखा) जीवनी शक्ति है। तेल व लौ की सहायता से जो ज्योति उत्पन्न हो रही है, उस प्रकाश को निरन्तर बनाए रखने वाला ही हमारा चेतन तत्त्व आत्मा है। जब तेल समाप्त हो जाता है तो यह जड़ शरीर भी चेतन आत्मा के छोड़ जाने से प्राणहीन (मृत) केवल मिट्टी ही रह जाता है। यदि जीवन में हमने केवल जड़ की ही उपासना की, तो मानो यह जीवन निरर्थक ही चला गया। अत: प्राण शक्ति और आत्मज्योति की ओर भी हमारा ध्यान होना चाहिए। आत्म ज्योति पर ध्यान केन्द्रित करते ही सारा संसार परिवर्तित हो जाएगा। दृष्टि बदली तो सृष्टि स्वयमेव बदल जाएगी और जीवन सार्थक हो जाएगा।

वैसे भी दीये की लौ (अग्निशिखा) निरन्तर ऊपर की ओर ही उठती रहती है। मानो अपने परमधाम व परमध्येय को ढूंढने सदा ऊपर को ही भागती जाती है। हमारी चेतना की अभीप्सा भी ऊर्ध्वा ही है। जड़ शरीर की सभी आवश्यकताएँ पूरी होने के बाद भी जीवन में परमध्येय परमपिता परमात्मा से मिलने की लालसा बनी रहती है। अत: मिट्टी के दीये इस तेल रूपी प्राण की सहायता से चेतन आत्मज्योति के प्रकाश में ही मानो उस परमज्योति परमात्मा का, जिसकी ज्योति दिन रात बलती रहती है, साक्षात् अनुभव हो जाता है।

'इस स्थान की सब खिड़कियाँ खोल दो, प्रभु के प्रकाश को व वायु के तेज को अन्दर प्रवेश करने दो।' शान्त स्थिर एकाग्रचित्त होकर उस अनन्त आनन्दस्वरूप परम प्रिय प्रभु की उपासना में एकरस महर्षि मग्न हो गए। 'ईश्वर तेरी इच्छा पूर्ण हो, तूने अच्छी लीला की।' गुणगुणाकर ने अपने भौतिक शरीर को सदा के लिए मौन कर परमेश्वर की व्यवस्था में अपने आप को सौंप दिया। एक महान जीवन की महान यात्रा की समाप्ति पर अन्तिम दृश्य को देखकर एक भक्त का आत्मबोध पूर्ण हो गया। और प्रारम्भ हुई प्रभु से प्रार्थना–'हे स्वप्रकाशस्वरूप। सूर्य चन्द्रमा

आदि प्रकाशकों के भी प्रकाशक! हे तेजोस्वरूप! अनन्त तेज को धारण करने वाले परम तेजस्वी! हे ज्योतिपुंज! ज्योतियों की ज्योति! मुझे अविद्या अंधकार से दूरकर अपनी शाश्वत ज्योति और अपने अनन्त प्रकाश की ओर ले चलो। मेरे मन में व्याप्त अज्ञान को, अविद्या को, असत्य को, अविश्वास को व अश्रद्धा को सदा सदा के लिए मुझसे दूर कर दो। हे अविद्या अंधकार निर्मूलक! विद्यार्क प्रकाशक सर्वशक्तिमान् प्रभो! मुझमें पवित्रतम सतोगुण को धारण कराओ। रजोगुण व तमोगुण मुझे मेरे कर्त्तव्य पथ से डिगा न सकें। हे सत्यस्वरूप परमात्मन्! मुझे भी सत्य की ओर ले चलो, मैं जीवन में सदा सत्याचरण करने वालों का ही साथ दूँ, अन्यों का नहीं। हे आनन्द के स्रोत आनन्ददाता! हे अमृत के स्रोत अमृतप्रदाता! आप कृपा करके मृत्यु रूपी दु:ख से छुड़ाकर मुझे अपने अमृत की प्राप्ति कराओ। मैं सांसारिक बंधनों से मुक्त होकर आपकी आज्ञाओं का पालन करता रहूँ। हे सच्चिदानन्द अनन्तस्वरूप परमात्मन्! मेरा जीवन आनन्दमय प्रकाशमय, ज्योतिर्मय, तेजोमय व अमृतमय हो जाए और मैं दूसरों का जीवन भी आनन्दमय, प्रकाशमय, ज्योतिर्मय व अमृतमय बनाने के लिए सदा कार्य करता रहूँ। हे परम दयालु परमकृपालु, देवो के देव! आप की दया कृपा सब पर बनी रहे, सब का मंगल हो। आज के दिन आपसे यही विशेष प्रार्थना है, कृपया इसे स्वीकार कर कृतार्थ करें। ओ३म्! ओ३म्!! ओ३म्!!!

डॉ. महाश्वेता चतुर्वेदी के दो गीत

●●अंधकार की पूजा में!

अंधकार की पूजा में
अनदेखा किया उजाला।
यदि देखा भी तो उसमें बस
केवल दोष निकाला।

बेईमानी को रुचिकर
लगते हैं सदा निवाले।
मधुरस के बदले लगती है
स्वादु विषैली हाला।

मन मन्दिर का झूठ देवता
बस उसका आराधन।
जीवन पथ का करता है
हर पल अधर्म संचालन।
सच कहने की बात उठी तो
मुंह पर ताला डाला।

आयु परीक्षित को डसता
तक्षक है क्रूर अपावन
नागयज्ञ बोला जन्मेजय
लिए दृगों में सावन।
असफलता ने अपना डेरा
उसके घर है डाला।

स्वप्नों को साकार बनाना
उसे नहीं है आता,
संकल्पों के जादू को
पग-पग पर है बिसराता।
रजत कणों के संचय में
तट पर लगता मतवाला।

मत मजहब की आंधी में
क्या धर्म नहीं है समझा?
राग द्वेष के जालों में
हर पल रहता है उलझा।
घृणा तिमिर से आच्छादित
क्या बांटे कभी उजाला?

●●सृजन यज्ञ

सृजन यज्ञ चलता है!

कण-कण में है ऋचा गान
जिसको है प्रकृति सुनाती
मननशील श्रोताओं का मन
पल-पल है विकसाती।
सुना नहीं उद्‌गीथ कि जिसने
अपने को छलता है।

समिधाएँ गर्मी हैं लाईं
शरद्‌काल हवि बनता
वासन्ती ऋतु के आंचल से
सुरभि सार है छनता।
उतरे यदि मन में पूनम-शशि
कभी नहीं ढलता है।।

संकल्पित मधुमास सदा से
जग को रहा जगाता।
जगने वालों के उपवन में
स्वादु सुफल उपजाता।
नेह मल्लिका पर मानवता
का प्रसून खिलता है।।

सरसों सा विश्वास भरें यदि
इस अरुणिम यौवन में।
रूपाभा मुस्काएगी
इस जीवन के उपवन में।
ऐसे में निरुपाय हुआ
पतझर भी कब खलता है!

●**गौरीशंकर वैश्य विनम्र,** 117 आदिलनगर, विकासनगर, लखनऊ- 226022 दूरभाष 09956087585

दीपावली में लोक संस्कृति-तत्त्व

दीपावली प्रकाश पर्व है। ज्योति का महोत्सव है। यह कार्तिक मास की अमावस्या को मनाया जाता है। दीपावली का लालित्य वस्तुत: प्रकाश और अँधेरे का मनोरम समन्वय है। अमावस्या की रात में झिलमिलाते एवं प्रकाश बिखेरते दीपों की शोभा देखते ही बनती है। दीपावली केवल दीप प्रज्वलन का पर्व नहीं अपितु लोक संस्कृति, आस्था, कला, लोकगीत, सामाजिक समरसता और जीवनमूल्यों का उत्सव है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कहा है- 'त्यौहारों के बिना लोकजीवन नीरस और सूखा हो जाता। दीपावली लोक संस्कृति का जीवंत उत्सव है।' वास्तव में दीपावली भारतीय समाज की गहन संवेदनाओं, सांस्कृतिक चेतना और सामूहिक लोकजीवन का दर्पण है।

दीपावली की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि :

दीपावली की पृष्ठभूमि को लेकर विविध मत हैं। कहा जाता है कि जब भगवान श्रीराम लंकापति रावण पर विजय प्राप्त करके अयोध्या आए, उस दिन कार्तिक मास की अमावस्या थी। कुछ विद्वान् इसे कृषि-प्रधान समाज का 'नवोत्थान पर्व' मानते हैं। क्योंकि यह शरद ऋतु में खरीफ की फसल के कटने और नए आर्थिक वर्ष की शुरुआत से जुड़ा है, इसीलिये इसका प्राचीन नाम 'नव सस्येष्टि पर्व' है। प्राचीन जैन परंपरा में दीपावली को भगवान् महावीर के निर्वाण दिवस के रूप में स्मरण किया जाता है। वहीं, सिख परंपरा में यह गुरु हरगोविंद जी की रिहाई और कारागार से 52 राजाओं की मुक्ति का स्मरण है। इस प्रकार दीपावली बहुआयामी ऐतिहासिक-सांस्कृतिक आधारों से जुड़ी हुई है।

दीपावली और लोक संस्कृति

वस्तुत: दीपावली 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' का संदेश देती है। दीपावली के पर्व में लोक संस्कृति के अनेक तत्त्व उजागर होते हैं-

1. दीपदान की परंपरा : प्रत्येक घर में दीयों का जलना, ग्राम-नगर की गलियों में दीपमालाओं का सजना केवल धार्मिक अनुष्ठान नहीं, अपितु लोक-सौंदर्य और सामूहिकता की अभिव्यक्ति है।

2. चित्रांकन और अल्पना : गाँवों में गोबर, मिट्टी और चूने से आँगन सजाना; स्त्रियों द्वारा रंगोली और अल्पना बनाना; ये सब लोककला के अनुपम उदाहरण हैं।

3. लोकगीत और लोकनृत्य : दीपावली की रात्रि में ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी विशेष गीत गाए जाते हैं। लोकगीतों में समृद्धि, सुख-शांति और घर-परिवार की मंगलकामनाएँ व्यक्त होती हैं।

4. सामूहिकता और मेल-मिलाप : दीपावली पर लोग आपस में मिलते हैं, मिठाइयाँ बाँटते हैं, बधाई एवं उपहार देते हैं। इस प्रकार वे सामाजिक समरसता का भाव प्रकट करते हैं। यह 'सर्वे भवन्तु सुखिन:' की भारतीय भावना का लोक-रूप है।

दीपावली में अनेक पर्व :

भारतीय लोकजीवन के दीपावली पर्व में अनेक प्रतीक निहित हैं। मुख्य दीप-पर्व अमावस्या के पूर्व त्रयोदशी को धनतेरस (धन्वंतरि जयंती), चतुर्दशी को नरक चतुर्दशी और दीपावली के बाद प्रथमा को गोवर्धन पूजा और द्वितीया को भैया दूज (यम द्वितीया) पर्व भी दीपावली से जुड़े पर्व हैं। दीपक ज्ञान, आशा, सकारात्मकता एवं भारतीय संस्कृति के संरक्षण का प्रतीक है। दीपावली मंगल, संपन्नता, बुद्धि और श्रम के महत्त्व की स्वीकृति है। शुभ और समृद्धि का संदेश देती है।

गोवर्धन पूजा और अन्नकूट : कृषि-प्रधान संस्कृति गौ और अन्न के प्रति कृतज्ञता प्रकट की जाती है। इस दिन गोवंश की उन्नति के लिए उनकी सेवा और संरक्षण का संकल्प दृढ़ किया जाता है।

भैया दूज : परिवार, विशेषकर भाई-बहन के रिश्ते का सामाजिक महत्त्व। इस दिन भाई बहिन को उपहार देता है और बहिन भाई को रोली-अक्षत से टीका लगाती है।

स्वच्छता : घर की साफ-सफाई करके कूड़ा-कचरा घर के बाहर फेंक दिया जाता है। घर की पुताई आदि हो जाने से घर

एवं वातावरण शुद्ध और सुंदर हो जाता है। इससे नये उत्साह के साथ स्वास्थ्य-लाभ भी मिलता है।

लोक मानस इन संकल्पों के माध्यम से जीवन मूल्यों को पीढ़ी-दर-पीढ़ी संजोकर रखता है।

दीपावली और लोककला :

दीपावली का पर्व लोक कलाओं का उत्सव भी है। घर-घर में दीयों के विविध आकार, कुम्भकारों की कलात्मकता, बाजारों में खिलौनों और प्रतिमाओं का निर्माण- ये सब लोक शिल्प के जीवंत उदाहरण हैं। डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी ने ठीक ही कहा है- 'भारतीय त्योहारों में लोक की कलात्मक चेतना का अद्भुत प्रदर्शन होता है, जिसमें समाज की सामूहिक रचनाशीलता झलकती है।'

आर्थिक और सामाजिक आयाम :

दीपावली केवल धार्मिक नहीं, अपितु आर्थिक दृष्टि से भी लोक संस्कृति का केंद्र है। ग्रामीण भारत में कुम्भकार, बढ़ई, स्वच्छकार, रँगाई-पुताई करने वाले , बुनकर, मिठाई बनाने वाले, बर्तन विक्रेता आदि सब इस पर्व से जुड़ते हैं और उन्हें रोजी-रोजगार मिलता है। बाजारों में रौनक, मेलों का आयोजन और नई वस्तुओं की खरीददारी- यह सब समाज में आर्थिक सक्रियता और उत्साह का संचार करते हैं। कुछ वर्षों में झालरों, चीनी लड़ियों और इलेक्ट्रॉनिक बल्बों पर हमारी निर्भरता बढ़ी है, जिससे मिट्टी के दीयों का कारोबार सिमट गया है। हमें मिट्टी के दीयों पर भरोसा करके इसके उपयोग को बढ़ावा देना चाहिए, जिससे स्वरोजगार और स्वदेशी को प्रोत्साहन मिल सके। मिट्टी के दीये हमें प्रकृति के निकट लाते हैं और जड़ों से जोड़ते हैं। दीये जगमग रोशनी भले ही न दे सकें, मन को शांति एवं आत्मिक आनंद तो प्रदान करते ही हैं। इनसे प्रदूषण भी नहीं फैलता और इनका निपटान भी वापस मिट्टी में हो जाता है।

दीपावली और कृषि संस्कृति :

भारतीय समाज मूलत: कृषि-प्रधान है। दीपावली के समय खेतों से खरीफ की नई फसल आ चुकी होती है। अन्नकूट और गोवर्धन पूजा इसी कृषि-जीवन का उत्सव है। लोकगीतों में किसान अपनी फसल की खुशहाली और पशुधन की रक्षा की मंगलकामना करता है।

लोकविश्वास और अंधविश्वास

लोक संस्कृति के साथ लोकविश्वास भी जुड़े रहते हैं। समय के साथ दीवाली की परम्पराओं और मान्यताओं में अंधविश्वास और अतिशय प्रदर्शन भी जुड़ गए हैं, जो पर्यावरण और स्वास्थ्य के लिए चुनौती हैं। दीपावली पर्व से कई कुरीतियाँ भी जुड़ गई हैं। इनमें से एक है जुआ खेलना। दीपावली से लगभग 15 दिन पूर्व से ही जुआ खेला जाने लगता है। यह दीपावली के बाद तक चलता रहता है। इसी कारण मदिरापान बढ़ जाता है। हारे जुआरी में अपराध बोध से आत्म हत्या तक हो जाती है। घर का धन एवं आभूषण तक चला जाता है। इससे चोरी, हत्या और लूटपाट की घटनाएँ बढ़ जाती हैं।

दूसरी कुरीति अंधविश्वास से जुड़ी हुई है, इसमें अमावस्या की रात्रि को तांत्रिक अपनी तंत्र विद्या, बलि आदि देकर विभिन्न सिद्धियों को प्राप्त करने का दावा करके उनका प्राय: गलत प्रयोग करते हैं। अविद्याग्रस्त, अंधविश्वासी लोग तांत्रिकों के शिकार बनते हैं और वे धन एवं प्रतिष्ठा गँवा बैठते हैं। तीसरी कुरीति है आतिशबाजी। यह भी बहुत घातक परम्परा है। लोग आतिशबाजी में हजारों-लाखों रुपये फूँक देते हैं। कई दिनों रात गए तक पटाखों का कानफोड़ू शोर होता रहता है, जिससे मनुष्यों के साथ पशु-पक्षियों को भी कष्ट होता है। वातावरण में घनघोर वायु प्रदूषण बढ़ जाता है। प्रतिवर्ष पटाखा-विस्फोट से अनेक लोग हताहत होते हैं। हमें इन अंधविश्वासों और कुरीतियों को दूर करने की आवश्यकता है, इसके लिए संचार माध्यमों से एवं जन-जागरण के द्वारा जागरूकता लाने के प्रयास करने चाहिएँ।

आधुनिक संदर्भ में दीपावली

आज दीपावली केवल ग्रामीण या पारंपरिक लोकजीवन का पर्व नहीं रहा। शहरी परिवेश में भी यह लोक संस्कृति का वाहक है। यद्यपि आधुनिकता के दबाव में इसकी सादगी और सामूहिकता पर बाजारीकरण हावी हो गया है, फिर भी, दीपावली आज भी भारतीय लोक संस्कृति की धड़कन है। प्रकाश पर्व व्यक्ति को परिवार से, परिवार को समाज से और समाज को सांस्कृतिक विरासत से जोड़ता है। यह पर्व हमें प्रकाश, ज्ञान, उत्साह और समृद्धि का संदेश देता है। युगों से दीपावली ने भारतीय समाज को एकता, सौंदर्य और आशा से जोड़ रखा है। अत: निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि दीपावली भारतीय लोक संस्कृति की जीवंत अभिव्यक्ति है।

वैश्विक स्वरूप लेती दीपावली :

भारत और भारतवंशियों की उन्नति के साथ-साथ

अब उनसे जुड़ी हर गतिविधि में विदेशियों की रुचि बढ़ने लगी है। भारत का सबसे लोकप्रिय त्यौहार दीपावली भी इससे अछूता नहीं है। आज से लगभग 50 वर्ष पहले यूरोप और अमेरिका के लोग दीपावली के दिन घरों के बाहर सजाए जाने वाले दीयों और रंगोलियों को कुतूहल भरी दृष्टि से देखते थे, किन्तु वे आज न केवल उसे देखकर खुश होते हैं, अपितु अपने घरों में भी सजाने लगे हैं। मलेशिया, सिंगापुर, श्रीलंका, नेपाल और मारीशस जैसे देशों में न केवल सार्वजनिक अवकाश होता है, अपितु वहाँ अनेक शहरों में दीपावली पार्टी होती है। अमेरिका, ब्रिटेन, संयुक्त अरब अमीरात, दुबई, दक्षिण अफ्रीका आदि अनेक देशों में बाजारों को रंग-बिरंगी रोशनियों, रंगोलियों और दीयों से सजाया जाता है एवं ग्लोबल विलेज मेले की शोभा देखते ही बनती है। मलेशिया में दीपावली पर आतिशबाजी नहीं की जाती है। इसलिए उसे हरित दीपावली कहा जाता है। थाईलैंड में दीयों की जगह केले के पत्ते के दोने में मोमबत्तियाँ रखकर पानी में बहाई जाती हैं। अब भारतवंशियों की वर्ष की लगभग आधी कमाई दीपावली त्यौहार पर होने लगी है। अकेले भारत में दीपावली पर लगभग सात लाख करोड़ का व्यापार होता है। इससे सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि पूरे विश्व भर में दीपावली पर कितना व्यापार होता होगा। इस प्रकार दीप पर्व भारतीयता के प्रसार के साथ वैश्विक स्तर पर देश की अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करने में योगदान कर रहा है।

दीपावली का संदेश :

दीपावली हमें उल्लास से भर देती है। दीपावली की ज्योति-प्रक्रिया, स्रोत एवं संरचना एक ऐसी सहृदयता एवं एकता पर आधारित हैं, जो सबको जोड़कर चलती हैं। वर्तमान समय जिस तरह से नकारात्मकता और संवेदनहीनता का पर्याय बना हुआ है, उसमें स्नेह की अत्यधिक आवश्यकता है। दीपावली सौंदर्य की महत्ता का पर्व है। आज सृजनात्मकता, कला तत्त्व, मूल्य, संस्कार तथा कल्पना जैसे शब्दों की अर्थवत्ता को पुन: जीवंत करने का समय है। मिट्टी की कला के इतने विविध रूप दीप पर्व पर देखने को मिलते हैं कि शायद वर्ष भर न मिलते हों। हमारे यहाँ इन कलाओं को संरक्षित और संवर्द्धित करने की आवश्यकता है। फाइबर, प्लास्टिक, चीनी मिट्टी आदि के बढ़ते चलन के बीच मिट्टी की कला सहेजी जानी चाहिए।

किसान के वैभव में ही दीपावली का वैभव छिपा हुआ है। अत: कृषि को राष्ट्रीय समृद्धि का आधार बनाने की आवश्यकता है। दीपावली हमें संकीर्णता, संवादहीनता एवं विद्वेष की भावनाओं को तिरोहित करना सिखाती है। दीपावली का मूल संदेश है- 'तमसो मा ज्योतिर्गमय'। अत: हमें दीपावली में अपने सृजन के दीये को जलाना चाहिए, जिससे हम स्वयं प्रकाशित हो सकें और राष्ट्र को प्रकाशपथ पर अग्रसित कर सकें।

अस्तु, दीपमालिके ! मंगलमय हो।

जलाएँ दीप सब मन में

अंधेरे में उजाला कर जलाएँ दीप सब मन में,
कि रौशन हों सभी के मन न नफरत हो किसी मन में,
चलें सब नेक रस्ते पर करे ना कुछ बुरा कोई,
बुराई को खत्म करने का जज्बा आए चिन्तन में,
बड़े-बूढ़े जो शिक्षा दें तो उन पर चलके हम देखें,
करें सम्मान उसका जिसने पाला हमको बचपन में,
करें नि:स्वार्थ सेवा फिर फलें फूलें व मुस्काएँ,
जो उत्सव हो तो जाएँ नाचें कूदें जैसे मधुवन में।
न हो परवाह मरने की वतन पर आए जब संकट
हथेली पर लिए हम जान लड़ने जाएँ सब रण में।

●**डॉ. केवल कृष्ण पाठक**, सं. रवीन्द्र ज्योति
आनन्द निवास गीता कालोनी जींद-126102

कायदा

●आर्यन वशिष्ठ

कायदे से बता दो-
जिंदगी का क्या करना है?

यहाँ खुशियाँ कमानी हैं,
या दौलत पर मरना है?

क्यों रोटी की तलाश में,
हजारों मील चलना है!

निकल आया हूँ अपने गाँव से,
निकल आया हूँ अपने गाँव से,

अब किस शहर ढलना है?

●कैप्टन रुद्रसेन सिन्धु, अध्यक्ष परममित्र मानव निर्माण संस्थान
सिन्धु भवन, सैक्टर 14, रोहतक-124001

सांस्कृतिक सन्दर्भ

हमारे स्वस्तिभाव और मंगलकलश हैं वृद्ध

वाल्मीकि रामायण में वन प्रवासी श्रीराम को अयोध्या लौटा ले जाने की मंशा से प्रेरित श्रीराम-भरत मिलाप के अवसर पर श्रीराम अनुज भरत से पूछते हैं-

कश्चिद् देवान् पितृन् भृत्यान गुरुन् पितृसमानपि।
वृद्धांश्च तात वैद्यांश्च ब्राह्मणांश्चाभिमन्यसे।।73।।

(तात! क्या तुम देवताओं, पितरों, भृत्यों, गुरुजनों, पिता के समाज आदरणीय वृद्धों, वैद्यों और ब्राह्मणों का सम्मान करते हो।)

कश्चिद् वृद्धांश्च बालांश्च वैद्यान् मुख्यांश्च राघव।
दानेन मनसा वाचा त्रिभिरेतैः शुश्रूषसे।।90।।

(राघव क्या तुम वृद्ध पुरुषों, बालकों और प्रधान-प्रधान वैद्यों का आन्तरिक अनुराग, मधुरवचन और धनदान इन तीनों के द्वारा सम्मान करते हो?)

कश्चिद् गुरूंश्च वृद्धांश्च तापसान् देवताविधीन्।
चैत्यांश्च सर्वान् सिद्धार्थान् ब्राह्मणांश्च नमस्यसि।।97।।

(गुरुजनों, वृद्धों, तपस्वियों, देवताओं, अतिथियों, चैत्य वृक्षों पूर्णकाम ब्राह्मणों को नमस्कार करते हो न?)

वाल्मीकि रामायण के ये तीन श्लोक एक ही सर्ग से लिए गए हैं, जिनमें अलग-अलग लोगों के अलावा राम भरत से जिस वर्ग को बार-बार सम्मान देने, आंतरिक अनुराग युक्त करने व कुशल क्षेम जानते रहने की इच्छा व्यक्त करते हैं, वे वृद्धजन हैं। बाद के दो श्लोक तो एकदम स्पष्ट हैं, जिनमें वृद्धजन के प्रति राम का आंतरिक अनुराग बार-बार व्यक्त होता है।

हमारी पारिवारिक व सामाजिक संरचना के पीछे जो एक विशद सांस्कृतिक भावबोध है, और जिसकी अभिव्यक्ति संस्कृत के विपुल साहित्य और बाद में हिन्दी की समृद्ध साहित्य चेतना में हुई है, उसमें वृद्धजनों को अत्यंत आदरणीय स्थान दिया गया है। समूचे भारतीय वाङ्मय में वृद्धजनों के प्रति व्यक्त इस भाव की पृष्ठभूमि को समझा जाना चाहिए।

दरअसल, हमारी संयुक्त परिवार व्यवस्था में बुजुर्गजन परिवार के मुखिया, नेतृत्वकर्त्ता होते थे। (हैं?) यह सम्मान वे अपनी अनुभवशीलता, परिपक्व जीवन दृष्टि, दूरगामी समझ, स्नेह-स्रोत केन्द्र होने के कारण स्वतः अर्जित कर लेते थे। पुत्रों, पौत्रों, प्रपौत्रों की तीन-तीन पीढ़ियां एक साथ अनजाने में ही सहज जीवनचर्या में अपने पितामह से स्नेह-छाया और वत्सल-रस पाते रहते थे। छोटे-बड़े पादपों का इस तरह स्नेह-सिंचन पितामह या दादी के प्रति अपूर्व आदरभाव का आधार बनता था। आगतपीढ़ी अपनी नाभिनाल के मूलस्रोत को भी समझती थी और उस नाभिनाल के अमृततत्व का पान कर बड़ी होती थी। आत्मानुशासन, जीवन व्यवहार, पड़ोसी धर्म, सामाजिक रीति, शास्त्र और लोक की आचार मर्यादाएँ, भाषा की तमीज, भोग और त्याग के द्वन्द्व, आसक्ति-अनासक्ति की सीमाएं और आस्था के कोणों और क्षितिज के अर्थ भी शिशु-किशोर अपने दादा-दादी से ही सीखता था---और यह सब औपचारिक शिक्षा या उपदेश से नहीं बल्कि निरन्तर साहचर्य पाठ से होता था। वैयक्तिक उन्नयन का विश्वास भी वृद्ध की सेवा से जुड़ा था।

अभिवादन शीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्द्धन्ते आयुर्विद्यायशोबलम्।।

(नित्य अभिवादनशील और वृद्ध की सेवा करने वाले व्यक्ति की आयु, विद्या, यश, और बल चारों में वृद्धि होती है।)

बीसवीं शताब्दी के मध्य तक आते-आते संयुक्त परिवार टूटने लगे। धर्म और ईश्वर की जगह क्रमशः पदार्थवाद और संशय ने ले ली। इस चक्र की रफ्तार तेज होती गई और बुजुर्ग हमारे लिए 'तुम छत से छाए/जमीन से बिछे खड़े दीवारों से/तुम घर के आंगन/बादल से घिरे/रहे बौछारों से/ (मालवीय की 'पिता' रचना, 'कहो सदाशिव' संग्रह से)

थे, वे धीरे-धीरे हमारी पारिवारिक ईकाई से अपदस्थ होने लगे। यह विस्थापन पहले भावना के धरातल पर था बाद में वस्तुवादी हो गया। हमारे बुजुर्ग अप्रासंगिक होकर अपने ही घर में बेगाने हो गए या फिर वृद्धाश्रम में भेज दिए गए।

हमारी आश्रम परम्परा में 'संन्यास' तो है 'वृद्धाश्रम' नहीं था, संभवत: आयातित पश्चिमी जीवन शैली में मिला यह भी एक ऐसा नुस्खा है, जिसे हमने अनजाने ही ओढ़ लिया। कई वर्ष पूर्व गुजरात में आए प्रलयंकारी भूकंप के बाद दूरदर्शन के अनेक दृश्यों से वृद्धाश्रम की एक वृद्धा के न रुकने वाले अपार आंसू थे और था हृदय का चीत्कार- 'मेरा लड़का कभी-कभी मुझसे मिलने आता था और तब से मैं उसे देखकर जुड़ा पाती थी, अब मैं किसलिए जिऊंगी- मरने के लिए तो मैं थी, मौत मेरे बेटे, मेरे संसार को क्यों ले गई। वृद्धाश्रम में रहने वाली मां भूकम्प में मारे गए अपने बेटे और उसके परिवार के लिए जीते हुए भी मर रही थी, उसकी मृत्यु यंत्रणा का सैलाब तो अब मात्र फूट पड़ा था, किन्तु वृद्धाश्रम में रहते हुए वह कब से तिल-तिल कर मर ही थी, इसे मापने का कोई यंत्र काश हमारे वैज्ञानिक युग ने इजाद किया होता और हम अपने मन की आंखों से परिवारों से दूर वृद्धाश्रमों में रहने के लिए विवश हुए बुजुर्गों की गुमसुम हा हा कार देख पाते।

हिन्दी कहानीकार ऊषा प्रियंवदा अपनी एक कहानी को लेकर आज तक खास तौर पर याद की जाती हैं। चरित्र नायक गजाधर बाबू रेलवे की लम्बी नौकरी से सेवानिवृत्ति पाकर अपने बच्चों-नाती, पोतों के भरे संसार में चले आते हैं। उनको उनकी बेटी, बहू और बेटे यहां तक कि पत्नी भी एक छोटे से 'स्टोर रूम' के एक कोने में चारपाई की हद में समेट देते हैं। परिवार के सभी जन अपनी-अपनी रौ में थे, किसी को परवाह न थी कि गजाधर बाबू के मन में क्या बीत रही होगी कि अपने घर में भी उनके लिए एक कमरा तक नसीब न था। वे परिवार जनों का यथार्थ भांप गए और निराश होकर उस दुनिया में चले गए जहां कम से कम एक छोटे कमरे और किसी अजनबी से आत्मीयता पाने की संभावना बची थी। गजाधर बाबू की यह 'वापसी' इस दौर की कमोबेश समूची बुजुर्ग पीढ़ी का संत्रास है।

बेशक: हम यह न मानें कि बुजुर्गों की सेवा ईश्वर की सेवा है, कि उनकी मुस्कुराहट में आशीष का अमृतत्व है, कि वे हमारे अहेतुक शुभचिन्तक और अकारण कृपालु हैं, कि हमारी तपन और तृषा को अपने को मिटाकर भी हमें छाया और शीतल तृप्ति देना चाहते हैं, किन्तु हमें मनुष्य होने के नाते इतना तो विचारना ही चाहिए कि जिन्होंने अपने सत्व से हमारा निर्माण किया है, हमें शकल दी और हमें संवारा है उनके प्रति हमारा दायित्व तो है ही। यह ऋण-बोध भी यदि हमारे भीतर नहीं है तो हमें अपने होने को 'जांचना' और आश्वस्त होना चाहिए।

कहा जाता है विवेकानन्द जब किशोर नरेन थे तब उन्होंने अपने पिता से पूछा था-'आपने मेरे लिए क्या किया है? पिता ने बगैर नाराज हुए उत्तर दिया था-'जाकर आइने में देख, तब समझेगा।'

हम ऐसी सब किताबें काबिले जब्ती समझते हैं,
जिसको पढ़ के बेटा बाप को खब्ती समझते हैं।

इसकी शब्द संरचना जितनी सीधी सपाट है। उसकी व्यंजना विशद और व्यापक सरोकार लिए है। ऐसी शिक्षा जो हमको समुन्नत, तकनीकी, वैज्ञानिक, संसाधनों से युक्त और नई प्रविधियों से हमारे जीवन को भर दे किन्तु जिसमें अपने बुजुर्गों से आचार का माद्दा न मिले, जो इन्सानियत का सबक न सिखा सके उसके स्वरूप की जांच की जानी चाहिए। ऐसा तो नहीं कि शिक्षा की यह प्रणाली हमको होशियार, चतुर, चालाक तो बनाती हो किन्तु मनुष्य बनाने की क्षमता इसमें न हो।

बुजुर्ग हमारे स्वस्तिभाव और मंगल कलश हैं, वे धैर्य, क्षमा, स्नेह और ममत्व के आगार हैं। वे दूरदर्शी, अनुभव सम्पन्न और मार्गदर्शक हैं। वे देहरी के सौतिए और घर मंदिर के साक्षात देव हैं। वे यह सब कुछ भी न हों तो भी हमारे लम्बे समय के साथी-सहकार हैं। क्या किसी दीर्घकालिक सहचर को उसकी वृद्धावस्था में उपेक्षित होने देना चाहिए। अक्सर हम पास रहने पर जिन चीजों का मूल्य नहीं समझते दूर छिटक जाने पर उनकी याद भी बहुत तड़पाती है और यदि उनके सान्निध्य काल में हमारा व्यवहार भी ठीक नहीं रहा तब तो ग्लानि अन्दर-अन्दर हमें बहुत कुरेदती है, सूरदास की भाषा में पश्चाताप करते हुए-

धोखे ही धोखे डहुकायो,
समुझ न परी विषय रस गीध्यो, हरि-हीरा घर मांझ गंवाओ।

क्या ही अच्छा हो कि हमारी जिन्दगी में पश्चाताप और ग्लानि के ये क्षण न आने पावें।

●डॉ. संतोष गौड़ राष्ट्रप्रेमी 09996388169

पर्व-विशेष

कर्म की प्रेरणा का अवसर

दशहरा अर्थात् विजयादशमी और दीवाली के बीच में अन्तर भले ही लगभग बीस दिन का रहता हो, किन्तु दोनों को आपस में संबन्धित माना जाता है। विजयादशमी अर्थात् बुराई के प्रतीक अमर्यादित रावण, जो राक्षसी संस्कृति का प्रतिनिधि माना जाता है, पर मर्यादा के प्रतीक राम की विजय का दिन है।[1] संघर्ष के परिणाम का दिन है। कर्म की सफलता का दिन है। दूसरी ओर दीपावली एक नए उत्तरदायित्व को ग्रहण करने का दिन है। दीपावली के दिन मान्यता के अनुसार मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम ने अयोध्या के राजसिंहासन पर बैठकर एक राजा के कर्त्तव्यों को स्वीकार किया था। एक राजा के रूप में उन्हें क्या करना है? देश के प्रति उनके क्या कर्तव्य है? प्रजा में संस्कारों, आदर्शों व चरित्र के उच्च मानदण्डों की स्थापना के लिये उन्होंने स्वयं सर्वोच्च मर्यादाओं का पालन किया। व्यक्तिगत व पारिवारिक हितों पर सामाजिक हितों को अधिमान देने का प्रबंधन के सिद्धांत का जीवंत उदाहरण श्रीराम का जीवन है। इस प्रकार का प्रजापालक राजा इतिहास में खोजने से भी शायद दूसरा न मिले। शासन व प्रशासन में बैठे व्यक्तियों के लिए मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम से अधिक प्रेरक व्यक्तित्व और कोई दूसरा नहीं हो सकता। राम का चरित्र पूजा करने के लिए नहीं, अनुकरण करने के लिए है।

हम भारतीयों की सबसे बड़ी कमजोरी यह है कि हम कर्तव्य की अपेक्षा अधिकार को, विकास की अपेक्षा परंपरा को, व्यवहार की अपेक्षा सिद्धांत को, कर्म की अपेक्षा परिणाम को और पूर्वजों से प्रेरणा ग्रहण करने की अपेक्षा सेलीब्रेशन को प्राथमिकता देते हैं। विजयादशमी पर रावण का पुतला जलाते हैं और अपने आचरण में रावण के ही स्वार्थवादी चरित्र को भी ग्रहण करते हैं। केवल अपने क्षणिक मनोरंजन के लिए समाज और पर्यावरण दोनों को हानि पहुँचाकर उसे धर्म का नाम देकर अधार्मिक कर्म करते हैं।

मर्यादा व आदर्शों की प्रेरणा ग्रहण करने के लिए विजया दशमी और दीपावली बहुत अच्छे अवसर हैं। राक्षसी और मानवीय संस्कृति के संघर्ष में मानवीय संस्कृति की विजय का प्रतीक विजयादशमी है। राक्षसी संस्कृति मतलब भोगवादी प्रवृत्ति, राक्षसी संस्कृति मतलब अधिकार की प्रवृत्ति, राक्षसी संस्कृति मतलब अवसरवादी प्रवृत्ति, राक्षसी संस्कृति मतलब प्रदर्शन व दिखावे की प्रवृत्ति है। राक्षसी संस्कृति मतलब अपने लाभ के लिए पर्यावरण को हानि पहुँचाने की प्रवृत्ति। विचार करने की आवश्यकता है कि क्या हम विजयादशमी पर रावण बनाने में मानव प्रयोग के संसाधनों का प्रयोग करके और फिर उसमें आग लगाकर पर्यावरण को हानि पहुँचाकर राक्षसी संस्कृति का ही विस्तार नहीं कर रहे हैं? दीपावली पर उच्चतम न्यायालय के प्रतिबंध को धता बताते हुए पटाखों के माध्यम से पर्यावरण को हानि नहीं पहुँचा रहे हैं? हमें विचार करने की आवश्यकता है कि हम रावण का अनुकरण कर रहे हैं या राम का?

क्या विजयादशमी के दिन ऊँचे से ऊँचा रावण बनाने की प्रतियोगिता भारतीय जनमानस का कोई हित करती है? क्या पटाखों के जलाने से पर्यावरण को सुरक्षा मिलती है? क्या बीमार, बालक और वृद्ध ही नहीं, सामान्य जन के लिए इन पटाखों के जलाने से प्राणवायु की शुद्धता सुनिश्चित होती है? क्या वनवासी राम ने राक्षसी संस्कृति से पर्यावरण की रक्षा के लिए ही संघर्ष नहीं किया था? विशाल स्तर पर किए जाने वाले उक्त कार्यों व उनके प्रभावों से क्या जनजीवन को सुखद व सुरक्षित बनाने का आश्वासन मिलता है? दशहरा और दीपावली से प्रेरणा लेकर कितने लोग अपने आचरण में श्री राम के चरित्र से प्रेरणा लेकर सुधार करते हैं? क्या जल, जंगल, जमीन और जीवन के लिए पुतला दहन और दीपावली पर अधिक से अधिक अनियंत्रित पटाखे जलाने से जीवन और पर्यावरण की सुरक्षा सुनिश्चित

हो रही है?

केवल परंपरा का निर्वाह हमें विकास के पथ पर अग्रसर नहीं कर सकता। किसी भी कर्म को करने से पूर्व यह विचार कर लेना चाहिए कि हम उसके वास्तविक भाव को समझकर उसे यथार्थ रूप में करें ताकि उसके यथार्थ परिणामों को प्राप्त कर सकें। विजयादशमी और दीपावली दोनों पर ही इन पर्वों के मूल भाव को समझते हुए अपने-अपने अन्दर पनपती राक्षसी प्रवृत्तियों पर नियंत्रण करने की आवश्यकता पर विचार करना चाहिए। मानव, मानवता और पर्यावरण की सुरक्षा के लिए श्री राम द्वारा किए गए कर्म से प्रेरणा ग्रहण कर अपने को कर्मपथ पर अग्रसर होना चाहिए। उनके मर्यादापूर्ण आचरण का अनुकरण कर, उनके कर्म पथ पर चलकर अपने आपको उनका सच्चा अनुयायी सिद्ध करना चाहिए।

आइए! इन पर्वों को केवल परंपरा के रूप में नहीं, यथार्थ रूप में अपनी दुष्प्रवृत्तियों पर विजय प्राप्त कर अपनी पारिवारिक व सामाजिक व्यवस्था को अधिक सुरक्षित करने के लिए संकल्प लें। बलात्कार की प्रवृत्ति, सामूहिक बलात्कार की प्रवृत्ति, बलात्कार के झूठे मामले दर्ज कराकर ब्लैकमेलिंग की प्रवृत्ति, नग्नता की प्रवृत्ति, दहेज और दहेज हत्याओं की प्रवृत्ति, दहेज के खिलाफ बने कानूनों का सहारा लेकर झूठे दहेज के केस लगाकर धंधेबाज औरतों की ब्लैकमेलिंग की प्रवृत्ति, विभिन्न प्रकार के ड्रग्स और नशे की प्रवृत्ति आदि सभी दुष्प्रवृत्तियाँ राक्षसी प्रवृत्तियाँ हैं। ये व्यक्ति, परिवार और समाज को अपूरणीय क्षति पहुँचा रही हैं। ये केवल महिलाओं के लिए ही नहीं, संपूर्ण मानवता की सुरक्षा और संरक्षा के लिए घातक हैं। इन पर विजय पाए बिना हमारे लिए विजयादशमी और दीपावली मनाना, वास्तविकता से दूर भागना है। इनके खिलाफ खड़े होकर हम संघर्ष करें। यह श्री राम का ही अनुकरण होगा। रावण का पुतला न जलाएँ, इन राक्षसी प्रवृत्तियों को जलाएँ। अपने अन्तर्मन को स्वच्छ करें और पर्यावरण के अनुकूल दीपावली का दीप जलाएँ।

-प्राचार्य, जवाहर नवोदय विद्यालय,
कालेवाला, ठाकुरद्वारा, मुरादाबाद-244601 (उत्तर प्रदेश)

आओ मिल हम दीप जलाएं।

●डॉ. संतोष गौड़ राष्ट्रप्रेमी

**आओ मिल हम दीप जलाएं।
दीपावली पर दीप जलाएं।
अंतर्मन को हम महकाएं।
सहयोग, समन्वय व सौहार्द्र से
आओ मिल हम दीप जलाएं।**

**दिल से दिल मिल गीत सुनाएं।
खुद सीखें, औरों को सिखाएं।
ज्ञान को व्यवहार में लाकर,
आचरण अपना शुद्ध बनाएं।**

**पथ में सच का साथ निभाएं।
जीवन खुशियों से चमकाएं।
धोखे और कपट से प्यारे,
भूल किसी को नहीं लुभाएं।**

**अपने-अपने गीत न गाएं।
कमजोरों को ना ठुकराएं।
अकेले-अकेले चलोगे कब तक,
आओ मिल हम दीप जलाएं।**

बिटिया की विदाई

●सतीश कुमार, नारनौंद 8295960700

**ओ बाबुल आज तेरा आंगन,
दृग अश्कों से बना है सावन,
यहां थे तुम सब मेरे सहाई।
तेरी लाड़ली ले रही विदाई।**

**हो जाए अपना घर बेगाना,
अब लम्बा होगा आना-जाना,
हृदय में केवल बातें रहेंगी।
बस आती-जाती यादें रहेंगी।**

**इस घर का हर कोना पावन,
मैं रूठी मनाता, मां का दामन,
खूब खेलते बहन और भाई।
तेरी लाड़ली ले रही विदाई।**

**मां तेरी बाहों में बढ़ी-पली,
दूर हो रही डाली से कली,
फैली इसकी सुगन्धी पुरवाई।
तेरी लाड़ली ले रही विदाई।**

●श्रीयुत् गोपालराव हरि

महर्षि बलिदान दिवस

हे ईश्वर! तेरी इच्छा पूर्ण हो!

1883 की दीपावली : महर्षि दयानन्द के महाप्रयाण का मार्मिक चित्रण

बंधुगण! ता. 23 से लेकर ता. 29 अक्टूबर, सन् 1883 ई. तक सात दिवस चहुँ ओर नगर-नगरान्तरों से बराबर तार-पत्र और लौटकर आये हुये मनुष्यों के द्वारा यही खबर पहुँचती रही कि श्रीमान् स्वामीजी महाराज ने खेद तो अतिशय पाया, परन्तु जब से आबू और अजमेर पहुँचे, क्रमश: अच्छे होते जाते हैं। आशा है कि शीघ्र चंगे होकर यथानुक्रम अपना काम करेंगे। इस बारी की बीमारी से उठना उनका पुनर्जन्म होना है। इत्यादि प्राप्त समाचारों से वह कोलाहल, जो श्री जी महाराज को रोगग्रस्त सुनकर भरतखण्ड-भर में मच गया था, शान्ति पर आते कुछ भी विलम्ब नहीं हुआ था, कि इतने में एकदम से हवा पलट गई अर्थात्, 30 अक्टूबर को प्रात:काल होने के पूर्व अजमेर समाज से जहाँ-तहाँ के समाजों में 'तू चल, मैं चल' के तारों की ऐसी कतार बँध गई, कि जिससे समस्त भरतखण्ड में फिर हलचल मच गई।

विस्तार इसका इस प्रकार है कि ता. 29 को अर्द्धरात्रि के समय रोग ऐसा प्रबल हो गया कि जिसको देखकर डॉ. लक्ष्मणदास के छक्के छूट गये और कहने लगे कि इसे बुलाओ, उसे बुलाओ, यह करो, वह करो। परन्तु परम प्रशंसनीय काम कहना चाहिये अजमेर आर्यसमाज के उन सभापति आदि भद्र पुरुषों का, जिन्होंने इस दुरवस्था में भी अपने चित्त को भली-भाँति व्यवस्थित रक्खा। उन्होंने उसी क्षण से खूब-दौड़ की। तुरन्त वहाँ के बड़े डाक्टर न्यूमैन साहब को बुलाकर दिखाया तथा आगरे के सुप्रसिद्ध डॉक्टर बाबू मुकुन्दलाल जी को जवाबी तार दिया और घड़ी-घड़ी के समाचार, तार और पत्र द्वारा राजधानियों को और जल्दतर दौड़ आने के लिये ताकीदी तार इतर नगरस्थ समाजों को भेजकर जो कुछ वहाँ पर कर्त्तव्य था, वह सब बराबर और यथास्थित किया।

जिस समय तारीख तीस को डॉ. न्यूमन साहब ने स्वामी जी को आकर नीचे से ऊपर तक देखा, तो प्रथम अत्यन्त विस्मित होकर रह गये, फिर बोले कि 'धन्य है इस सत् पुरूष को! हमने आज तक ऐसा दिल का मजबूत कोई दूसरा मनुष्य नहीं देखा कि जिसको इस प्रकार नख से शिख तक अपार पीड़ा हो, वह तनिक भी आह वा अह तक न करे'। परिणाम में जो कुछ उपाय उचित जाना, वह बताय अपनी दक्षिणा के सोलह रूपये लेकर चले गये। डॉ. मुकुन्दलाल जी ने भी आने का तार दिया था, परन्तु आवश्यकता न रहने के कारण वे रोक दिये गये और जो कुछ जिसने कहा, वह सब बराबर किया। परन्तु किसी का कोई भी यत्न काम न आया। बस, इसी ता. 30 अक्टूबर सन् 1883 ई. अर्थात् कार्तिक कृष्णा 30, मंगलवार, सं. 1940 वि. के दिन, ठीक सूर्यास्त होने के समय, यह अपर भानु भी क्षण मात्र में अस्त हो गया और समस्त भूमण्डल न जाने किस काल तक के लिए तिमिरावृत हो गया।

हा शोक! हा शोक! हा शोक!

बंधु गण! इस जगत् में बहुधा लोग विपत्ति-समुद्र और संसारादि कतिपय वस्तु को अपार कहते हैं। परन्तु जब कि शोध लगाने वाले विज्ञानियों को उन सबका पार मिल सकता है, तो कभी वे अपार नहीं कही जा सकतीं, तो भी बहुत लोग प्रसंगवश उनको वैसा ही कहे जाते हैं। सो इसका मुख्य मूल केवल यही है कि सुनने वाले उसको अपार अर्थात् परम असह्य वा दुर्गम समझें। इसी प्रकार नहीं किन्तु उससे कहीं बढ़कर श्रीमान् जगद्गुरु स्वामी जी महाराज के वियोगजनित शोकार्णव का अपार विस्तार इस आर्यावर्त भर में विस्तृत हो गया जानिये, और ज्यों-ज्यों काल अधिक होगा, त्यों-त्यों यह शोकसागर अधिकतर फैलेगा, क्योंकि सम्प्रति स्वदेशीय प्रजा जैसी मुग्ध दशा में है, वैसी कभी भविष्यत् काल में न रहेगी। उस समय के लोग इस समय के वर्तमान अपने पितृपितामहादि पुरुषों की बुद्धि और स्थिति

पर भी अपार शोक करेंगे। बस, वही समय इस देश वालों के लिए पूर्ण सौभाग्यप्रद होगा और उसी काल के अत्रस्थ मनुष्यों का जन्म भी सफल कहावेगा। तथैव उन्हीं की संस्था पुन: इस भूमण्डल-भर में उदाहरणीय व सराहनीय होगी। यदि इस अवस्था में भरतखण्ड आज होता इस समय ऐसा शोक करने की आवश्यकता न होती। अस्तु ! 'हरेरिच्छा बलीयसी' कहने के सिवाय और कोई समाधान हमारा नहीं। आशा है कि वह सर्व-नियन्ता किसी रूपान्तर द्वारा भारत का सुधार करेगा।

बंधु गण! अब लिख जताना इस बात का परमावश्यक है कि श्रीमान् स्वामी जी महाराज की चरमावस्था इस अन्तिम दिवस किस विधि रही और किस रीति से उन्होंने अपना पंचभौतिक शरीर छोड़ा। देखिये, कई दिन से उनको बोलने तक की शक्ति न थी। और न बिना चार-छ: मनुष्यों की सहायता के करवट तक ले सकते थे। उसमें भी गत अर्द्ध रात्रि से ऊर्ध्व श्वास अति वेग से चल उठा था। परन्तु वे अपने योग-बल से उस पर बराबर विजयी बने रहे। यह अवस्था उनकी चार पहर वर्तमान रही। अर्थात् अन्त:स्थ वायु के बल को श्रीमान् बराबर परास्त करते रहे और परिणाम में मध्याह्न के समय एकदम से अच्छे प्रकार चंगे बन बोलने लगे। उसी समय उठ चलकर शारीरिक शुद्धि से निश्चिन्त हो पलंग पर आये। पीछे कुछ देर बड़ी सावधानी से बैठे रहे। पश्चात् लेट गए। श्वास अति वेग से चल रहा था। तो उनकी चेष्टा से स्पष्ट जान पड़ता था कि श्रीमान् उसको बलात् अवरुद्ध कर जगदीश्वर के ध्यान में बारम्बार अपने आत्मा को लगाये रहते थे। नेत्र खोलने के समय जब लोग पूछते थे कि 'श्रीमहाराज! आपकी प्रवृत्ति कैसी है?' तब स्पष्ट उत्तर यह मिलता था कि बहुत अच्छी है और परमानन्द है। एक बार के उत्तर में यह भी कहा कि एक मास के पश्चात् आज का दिवस बड़े ही आराम और आनन्द का है। इसी प्रकार दो दिन पूर्व, जिस समय श्री जी महाराज ने मसूदा से चलने के लिए ताकीद की थी और लोगों ने उसके उत्तर में यह कहा था कि महाराज आपको आराम हुए पीछे ले चलेंगे, तो आप बोले थे कि 'हाँ, ठीक है, दो दिन पीछे हमको अच्छे प्रकार आराम हो जायेगा। अस्तु!' इस अवस्था में एक प्रहर व्यतीत करके चार बजे के समय श्रीमान् ने आत्मानन्द सरस्वती और काशी-निवासी गोपाल गिरि जी को सम्मुख बुलाकर कहा कि बोलो, तुम्हारी क्या इच्छा है? और क्या चाहते हो? जो कुछ इच्छा हो वह कहो और पूछो। इतना सुनते ही उन दोनों के नेत्रों में जल भर आया और उन्होंने तुरन्त सिर उठाकर नमस्कार किया। तब उनके सिर पर श्रीमान् स्वामी जी महाराज ने कर कमल रखकर कहा कि आनन्दित रहो! फिर उन्होंने श्री स्वामी जी महाराज से कहा कि 'श्रीमहाराज, हम ईश्वर से यही चाहते हैं कि आपका शरीर अच्छा हो जाय।' इस पर उत्तर दिया कि 'भाई, शरीर का क्या अच्छा होना है। बनना-बिगड़ना उसका धर्म ही है। इस व्यतिरिक्त जो अच्छा है, वह अच्छा ही बना रहता है।'

इतने में और भी बहुत से भक्तगण वहाँ आ गये। उन्होंने भी नमस्कार किया। उन सबकी ओर बहुकाल तक प्रेमसनी दृष्टि से निहारकर बोले-कि 'अच्छा सब लोग आनन्दित रहो और किसी प्रकार का मद् विषयक शोक मत करो।' इस पर सब लोगों ने पूछा कि 'भगवन्! आपका चित्त कैसा है?' तो 'आनन्द-आनन्द' कहकर सबसे कहा कि 'अब तुम लोग मेरे सम्मुख से हट जाओ और फिर किसी को सम्मुख मत आने दो और कोठी के सब द्वार खोल दो।' इस अवसर श्रीयुत मोहनलाल विष्णुलाल जी पण्ड्या भी श्रीमान् उदयपुराधीश की आज्ञानुसार आ पहुंचे। उनसे कुशल-प्रश्नादि हुए। पीछे आपने पूछा कि 'आज की तिथि, पक्ष और वार क्या है?' किसी ने उत्तर दिया कि 'कृष्ण पक्ष का अन्तिम दिवस, अमावस मंगलवार है।' यह सुन सबको अपने सिरहाने की ओर करके स्वयं कोठी के भीतरी-बाहरी प्रदेशों की ओर अवलोकन करने लगे। इस समय साढ़े पाँच बज चुके थे। इस प्रकार किञ्चित् काल कोठी की चहुँ ओर से छवि निहार, प्रथम कुछ वेद-मन्त्रों को पढ़, पश्चात् संस्कृत और भाषा में जगदीश्वर का कुछ गुणानुवाद अति प्रसन्नतापूर्वक करके, कुछ काल समाधिस्थ रहकर, नेत्र खोल उच्चस्वर से बोले कि 'हे दीनदयालु सर्वशक्तिमन् परमेश्वर! तेरी यही इच्छा है तो अति उत्तम!' ऐसा कह गायत्री मन्त्रोच्चारण के सहित 'ओं शान्ति: शान्ति: शान्ति:' कहते हुए तीसरी शान्ति के उच्चारण के साथ ही परमधाम को पधार गए।

रात्रि-भर सारे अजमेर नगर में हाहाकार पड़ा रहा और इसी एक रात्रि ही में यह खबर भरतखण्ड के समस्त नगरों में फैल गई और प्रात: काल होते ही समस्त आर्यावर्त शोकाक्रान्त हो गया। इसी रात में पं. सुन्दर लाल जी अजमेर पहुँच गये। ज्यों-त्यों अजमेर वालों की वह रात्रि कटी और प्रात:काल होते ही विमान-रचना की तैयारी की गई। उसके

पश्चात् स्वामी जी के मृतक शरीर को अच्छे प्रकार से स्नान कराया, चन्दनादि सुगन्धित द्रव्यों से चर्चित कर, पुष्प-माला और वस्त्र पहनाय, विमान में अच्छे प्रकार से पधरा दिया। उस समय श्रीमान् का परम दिव्य मुखारविंद अवलोकन करने के लिये सैकड़ों मनुष्य चहुँ ओर से झपटे, परन्तु उनके तेज: प्रचुर चेहरे को देख बेचारे अति विस्मित और हर्ष-शोक-समाकुल हो रहे। इस प्रकार रेशमी वस्त्र, पुष्प-तोरण, माला और कदली-स्तंभादि से मंडित विमान-विराजित मृत मूर्ति के समन्तात् खड़ी सुयोग्य मनुष्य-मण्डली ने प्रथम बहुकाल परमोच्च स्वर से वेद-मन्त्रों का पाठ किया। तदनन्तर दस बजे के समय विमान उठाया गया और बराबर सब लोग पुष्प-वृष्टि करते हुए गाजे-बाजे के साथ चल दिये।

उस समय सबसे आगे स्वामी जी के शिष्य रामानन्द ब्रह्मचारी देवदत्त जी, गोपाल गिरि और पण्डित बृद्धिचन्द्र आदि पण्डित जन विमान के आगे-आगे वेद-मन्त्रों का पाठ उच्च स्वर से करते जाते थे। उसके चहुँ ओर आर्य-पुरुषों के यूथ के यूथ उमड़ चले थे। श्रीयुत् पण्डित भागराम जी जज अजमेर व रामबहादुर और पं. सुन्दरलाल जी अधिपति वर्कशाप अलीगढ़ आदि बड़े प्रतिष्ठित और भद्रपुरुष मार्ग में यथोचित बड़ी सावधानी से प्रबन्ध करते जाते थे। इस रीति से आगरा दरवाजे से निकल कर बड़ा बाजार चौक, धान की मण्डी और दरगाह बाजार आदि में होकर ठौर-ठौर ठहरते, वेद-ध्वनि करते मलूसर सरोवर के श्मशान में स्वामी जी का विमान जा उतारा।

यह स्थान अजमेर शहर के दक्षिण कोण में एक पहाड़ी के नीचे है और यही आज्ञा स्वामी जी की थी कि नगर के दक्षिण भाग में हमारा शरीर दग्ध किया जाय। जब वहाँ सब लोग स्वामी जी का विमान रख बैठे और संस्कार विधि में लिखे अनुसार वेदी बनाने का आरम्भ हुआ, तो उस परम कठिन अवसर में श्रीयुत पं. भागराम जी जज ने शोक-समुद्र में डूबे हुए मनुष्यों को धीरज बँधाने के अर्थ श्रीमान् अखिल-विद्या-निधान स्वामी जी महाराज की विद्या, परोपकार, देश-हितैषिता आदि अनुपम और अद्‌भुत गुणों की प्रशंसा में परमोत्तम व्याख्यान सुनाकर वहाँ पर एकत्रित हुए सहस्रों मनुष्यों को भित्ति-लिखित सा कर दिया।

वास्तव में इन महाशयों का यह सदुद्योग, साहस, वीर्य और पौरुष परम प्रशस्य है, क्योंकि ऐसे समय पर जब कि बात कहना भी कठिन हो तो फिर व्याख्यान देना कैसा है? कहते हैं कि उस समय पत्थर-सम हृदय भी दाडिमवत् विदीर्ण हो गये थे और फूट-फूटकर रुदन करते थे। तहाँ पर व्याख्यान पूरा करना शूरों का ही काम है। हा शोक! हा शोक! इसके अनन्तर पं. सुन्दरलाल जी ने भी अपना हृदय कठोर करके कुछ व्याख्यान करना चाहा और आरम्भ भी किया, परन्तु नहीं कहते बना। लाचार हिया हार चुप हो बैठे। इतने में वेदी तैयार हो गयी और समस्त सत्पुरुष उसके चहुँ ओर घुमड़ आये। उन सबों ने मिलकर स्वामीजी के स्वीकार पत्रानुसार 2 मन चन्दन, 10 मन आम्रादि काष्ठ, 4 मन घी, 5 सेर कपूर, 2।। बालछड़, आध सेर केसर, 2 तोला कस्तूरी आदि संचित किये पदार्थ लगाकर, तैयार की हुई चिता को रामानन्द द्वारा प्रज्वलित कराय, संस्कारविधि-लिखित वैदिक रीति से अन्त्येष्टि की। उस समय चिताजन्य सुगन्ध से वह समस्त प्रदेश और समुपस्थियों का मस्तिष्क सुवासित हो गया था।

इस प्रकार इस विधान को समाप्त करके चिता पर चौकी-पहरा बिठलाकर सब लोग उक्त सरोवर पर स्नानादि कर अति शोकाक्रान्त सायंकाल को निज-निज वास-स्थानों पर गये। हा शोक! हा शोक! हा शोक!

दूसरे दिन अजमेर समाज ने स्वामी जी का हिसाब-किताब, वस्त्र पुस्तकादि पदार्थ और जो कुछ कि वेदभाष्य छपने के लिये तैयार हो चुका था, वह सब श्रीयुत् मोहनलाल विष्णुलाल जी पण्ड्या को एक सूचीपत्र के अनुसार, जो स्वामीजी की पुस्तकों में मिला था, सम्हला दिया और जो सभासद् जहाँ कहीं के उस समय उपस्थित थे, उन्होंने उस सूचीपत्र पर अपने-अपने हस्ताक्षर कर दिये। इस अवसर पर यह भी लिख देना परमावश्यक है कि श्री 108 महाराणा उदयपुराधीश जी ने प्रशंसित पण्ड्या जी को श्रीमान् स्वामीजी की सेवा में भेजने के समय यह कह दिया था कि यदि जगद्‌गुरु महाराज का शरीर छूट जाय तो किसी प्रकार से वह चार-पाँच दिवस तक रक्खा जाय तो अतीव अच्छा होगा जिससे कि हमको भी उनका अन्तिम दर्शन हो जाय। परन्तु समयोपस्थित सभ्यों ने यह बात इसलिये स्वीकार नहीं की कि डाक्टर से चीरफाड़ करानी पड़ेगी सो यह बात अच्छी नहीं। अत: यह दाहादि सब कर्म इसी स्थान पर समस्त भक्तजनों ने श्रीजी महाराज की आज्ञानुसार यथाविधि समाप्त किया। (महर्षि की जीवनी 'दयानंद दिग्विजयार्क' से-प्रकाशक आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट)

●स्व. पण्डित क्षितीश जी वेदालंकार
(पूर्व सम्पादक 'हिन्दुस्तान' एवं 'आर्यजगत्')

ऋषि बलिदान दिवस

राष्ट्रचेतना के अग्रदूत : दयानन्द सरस्वती

1 नवम्बर सन् 1858 को महारानी विक्टोरिया ने लार्ड केनिंग के दरबार में सन् 57 के विद्रोहियों को क्षमादान की जो प्रसिद्ध घोषणा की थी, उसमें कहा गया था–

"To all those in arms against the government, we hereby promise unconditional pardon, amnesty and oblivion of all offences against ourselves, our crown and dignity, on their return to their homes and peaceful pursuits...... When by the blessings of providence, internal tranquility shall be restored, it is our earnest desire to stimulate the peaceful industry in India, to promote works of public utility and improvement and to administer its government for the benefit of all our subjects residents therein. In their prosperity will be our strength, in their contentment our security, and in their gratitude our best reward.....

Firmly relying ourselves on the truth of christianity and acknowledging with gratitude the solace of religion, we disclaim alike the right and the desire to impose our convictions on any of our subjects. We declare it to be our royal will and pleasure that none be any wise favoured, none molested and disqualified by reason of their religious faith and observance, but that all shall alike enjoy the equal and impartial protection of the laws, and we do strictly charge and enjoin all those who may be in authority under us that they abstain from all interference with the religious belief or worship of any of our subjects on pain of our highest displeasure."

विक्टोरिया को जवाब

इसका भाव यह है कि– 'जिन्होंने हमारी सरकार के विरुद्ध हथियार उठाए थे उनको हम बिना किसी शर्त के क्षमादान करते हैं और आशा करते हैं कि वे अपने–अपने घरों और काम धन्धों पर लौट जाएंगे। जब आन्तरिक शान्ति स्थापित हो जाएगी तब हमारी तीव्र इच्छा है कि हम भारत में शान्तिपूर्ण उद्योगों को प्रोत्साहन दें, जनोपयोगी और उन्नति के कार्यों को आगे बढ़ाएँ और अब अपनी सारी प्रजा के हित की दृष्टि से काम करें। उनकी समृद्धि ही हमारी शक्ति होगी, उनकी सन्तुष्टि ही हमारी सुरक्षा होगी और उनकी कृतज्ञता ही हमारा सर्वोत्तम पुरस्कार होगा।

हालाँकि हमारा ईसाइयत में दृढ़ विश्वास है और इसके द्वारा मिली शान्ति को हम स्वीकार करते हैं, फिर भी अपनी किसी प्रजा पर अपने विश्वासों को हम लादना नहीं चाहते। हम अपनी यह शाही इच्छा घोषित करते हैं कि अपनी धार्मिक मान्यताओं के कारण किसी के प्रति किसी प्रकार का पक्षपात नहीं किया जाएगा और न ही किसी को अयोग्य माना जाएगा, न ही किसी के साथ ज्यादती की जाएगी। इसके विपरीत सबको समान रूप से कानून का निष्पक्ष संरक्षण प्राप्त होगा और अपने अधीन समस्त कर्मचारियों को हम आगाह करते हैं कि यदि किसी ने हमारी प्रजा के धार्मिक विश्वास और पूजाविधि में दखल दिया तो उसे हमारे तीव्र कोप का शिकार होना पड़ेगा।'

उस समय के अन्य राष्ट्रचेता नेता किस तरह से सोचते थे उसका एक उदाहरण सन् 1885 में क्रांगेस के प्रथम अधिवेशन के सभापति श्री उमेशचन्द्र बनर्जी के अध्यक्षीय भाषण के इस समापन अंश से विदित होता है–

'ग्रेट ब्रिटेन ने हमें शान्ति और व्यवस्था दी है। उसने हमें रेलवे दी है और सबसे बढ़कर पाश्चात्य शिक्षा का अमूल्य वरदान दिया है। पर अभी बहुत कुछ किया जाना शेष है। यूरोप में शासन के सम्बन्ध में जो विचार वर्तमान

समय में प्रचलित हैं, यदि भारतीय लोग उनके अनुसार अपने देश के शासन के संचालन को इच्छा करें तो यह बात ब्रिटिश सरकार के प्रति उनकी भक्ति की भावना में किसी प्रकार बाधक नहीं होगी। भारतीयों की केवल यही आकांक्षा है कि सरकार के आधार को और विस्तृत किया जाए और जनता का उसमें समुचित हाथ हो।'

इससे स्पष्ट है कि इन राष्ट्रचेताओं के मन में विदेशी शासन को अनुचित मानने की कोई बात नहीं थी। उनमें अभी तक स्वराज्य और पूर्ण राजनीतिक स्वाधीनता की कल्पना भी उत्पन्न नहीं हुई थी। उनके लिए यही पर्याप्त था कि ब्रिटिश शासक किसी तरह यह विश्वास कर लें कि भारत में भी एक ऐसा वर्ग है जो शिक्षा, ज्ञान आदि की दृष्टि से पर्याप्त उन्नत है और वह ब्रिटिश शासन का पूर्ण वफादार रहकर शासन में अंग्रेजों की सहायता कर सकता है। इसलिए उस युग के काँग्रेस के इन अधिवेशनों में विक्टोरिया की जय-जयकार की जाती थी और बाद में सम्राट पंचम जार्ज के समय 'Long live the king' का गीत भी सोत्साह गाया जाता था। आपको यह जानकर आश्चर्य हो सकता है कि आज जो 'जन गण मन' वाला गीत हमारा राष्ट्रगान बना हुआ है, वह सबसे पहले काँग्रेस के ऐसे ही एक अधिवेशन में सम्राट पंचम जार्ज की स्तुति में ही पढ़ा गया था। अन्यथा 'जन गण मन अधिनायक' सम्बोधन का कोई अर्थ नहीं था।

इन सब राष्ट्रचेता नेताओं के विपरीत ऋषि दयानन्द की राष्ट्रचेतना कितनी प्रखर थी, उसका यह एक ही उदाहरण पर्याप्त है। ऋषि दयानन्द सत्यार्थप्रकाश के अष्टम समुल्लास में लिखते हैं–

'कोई कितना ही करे, परन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है, वह सर्वोपरि उत्तम होता है। अथवा मतमतान्तर के आग्रह रहित, अपने और पराये का पक्षपात शून्य, प्रजा पर माता-पिता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं है।'

इस कथन के भी एक-एक शब्द को गहराई से सोचिये, तो आप देखेंगे कि यह महारानी विक्टोरिया की घोषणा का तुर्की-ब-तुर्की जवाब है। अंग्रेजों के उस दमनकारी राज्य में क्या कोई और नेता इस प्रकार की बात कहने की हिम्मत कर सकता था? काँग्रेस के जन्म से भी दस वर्ष पहले ऋषि यह कह रहे थे, पर काँग्रेस वाले बाद में भी सन् 1929 तक वही राग अलापते रहे। हथकड़ी-बेड़ी पहनकर हलवा खाने को स्वर्गीय सुख मानने वाला आजादी की सूखी रोटी की महिमा को कैसे जान सकता है? दासता की मनोवृत्ति में और स्वाधीनता की मनोवृत्ति में यही अन्तर है।

इससे भी बढ़कर एक और उदाहरण दूँगा। ऋषि सत्यार्थप्रकाश के ग्यारहवें समुल्लास में लिखते हैं–

'जब सम्वत् 1914 के वर्ष में तोपों के मारे मन्दिर, मूर्तियाँ अंग्रेजों ने उड़ा दी थीं, तब मूर्तियाँ कहाँ गई थीं? प्रत्युत वाघेर लोगों ने जितनी वीरता की और लड़े, शत्रुओं को मारा, परन्तु मूर्ति मक्खी की एक टांग भी न तोड़ सकी। जो श्रीकृष्ण सदृश कोई होता तो इनके धुर्रे उड़ा देता और ये भागते फिरते। भला यह तो कहो कि जिसका रक्षक मार खाये, उसके शरणागत क्यों न पीटे जाएँ?'

वाघेर कौन थे ?

इस घटना के वर्णन से लगता है कि जैसे ऋषि इसके प्रत्यक्षदर्शी हों, क्योंकि भारत के किसी और इतिहासकार ने किसी इतिहास की पुस्तक में इसका उल्लेख तक नहीं किया। पर हम आर्यसमाजी भी कितने कूढ़मग्ज हैं कि ऋषि के निधन के लगभग 57 साल बाद तक भी हम यह नहीं जान पाए कि सम्वत् 1914 का अर्थ ईसवी सन् 1857 है। सन् 40 के आस-पास जब यह भान हुआ कि यह तो 1857 के समय की घटना है, तब वाघेर लोग कौन थे, यह समस्या खड़ी हो गई, क्योंकि किसी को इसकी जानकारी नहीं थी। मैंने स्वयं अपनी प्रथम द्वारिका यात्रा के समय वहाँ के पुरातत्व संग्रहालय के क्यूरेटर से मिलकर इस बारे में जानना चाहा, पर उनसे भेंट नहीं हो सकी। गुजरात के भी कई अनुसन्धानप्रिय विद्वानों से इस सम्बन्ध में पता लगाने को कहा। अन्त में ऋषि-जीवनी की खोज के लिए पूर्णत: समर्पित, भोपाल के श्री आदित्यपाल सिंह ने हाल में ही इस समस्या का समाधान खोज निकाला। अब से कुछ वर्ष पहले तक वे भी इस घटना का कोई सन्तोषजनक हल नहीं जान पाए थे। सन् 1980 में अजय बुक सर्विस, दरियागंज, दिल्ली से प्रकाशित कैप्टन एच. विलबर-फोर्स-बेल द्वारा लिखित 'दि हिस्ट्री ऑफ काठियावाड़ फ्राम दि अर्लिएस्ट टाइम्स' पुस्तक के पृष्ठ 214-215 में इस घटना का उल्लेख है। उसका सार यह है–

'सन् 1817 में अंग्रेजों ने ओखामण्डल बड़ौदा के गायकवाड़ को सौंप दिया था। जिन वाघेर लोगों की भूमि छिन गई थी उन्हें पेंशन दी जा रही थी। तभी से वाघेर लोग अपनी जमीन वापस हासिल करने के लिए आंदोलन करते

आ रहे थे। सन् 1857 में गायकवाड़ की सरकार ने पेंशन में गड़बड़ शुरू कर दी। इससे वाघेर लोगों को एक बहाना मिल गया। उन्होंने संघर्ष प्रारंभ कर दिया। अंत में गायकवाड़ ने ब्रिटिश सेना की सहायता ली। लेफ्टि. कार्टन के नेतृत्व में ब्रिटिश सेना ने संघर्ष को कुचलना चाहा। इस बीच वाघेर लोगों ने द्वारिका के किले पर कब्जा कर लिया। तब ब्रिटिश सेना ने और कुमुक मंगाकर जबर्दस्त हमला करके किला खाली करवाया। फैसला यह हुआ कि गायकवाड़ स्वयं विद्रोहियों के विरुद्ध कार्रवाई करेंगे। तब ब्रिटिश सेना वहाँ से हटी और गायकवाड़ की फौजों ने बसाई पर नियंत्रण स्थापित किया, किन्तु वाघेर लोगों ने किले का घेरा नहीं छोड़ा। अंत में दोनों में समझौता हुआ। सन् 1857 की राज्यक्रान्ति से प्रेरित होकर वाघेर लोगों ने सन् 1859 में सामूहिक रूप से जोधो मानिक के नेतृत्व में सारे ओखामण्डल प्रायद्वीप को घेर लिया। तब गायकवाड़ के प्रतिनिधि ने जिले के सारे मामले अंग्रेजों को सौंप दिये और कर्नल होनर के नेतृत्व में विद्रोह को शांत करने के लिए ब्रिटिश सेना भेजी गई। वाघेर काठियावाड़ में घुस गए और उन्होंने अबपुरा पहाड़ियों पर मोर्चा लगाया। अंत में उसी वर्ष दिसम्बर में उन्हें पराजित होना पड़ा।'

इस सन्दर्भ में विशेष ध्यान देने की बात यह है कि वाघेर लोगों की वीरता की प्रशंसा करते हुए 'अंग्रेजों के धुर्रे उड़ाने' की कामना की गई है। मैं आपसे पूछता हूँ, कि क्या अंग्रेजों के राज्य में कोई 'अंग्रेजों के धुर्रे उड़ाने' की बात करने की हिम्मत कर सकता था? यह हिम्मत वही व्यक्ति कर सकता था जिसे अंग्रेज 'बागी फकीर' कहते थे। ऐसे प्रखर राष्ट्रचेतना वाले व्यक्ति को यदि अंग्रेज अपना दुश्मन नं. 1 न समझें, तो क्या समझें?

राष्ट्रचेतना का अग्निपुञ्ज

ऋषि ने अपने वेदभाष्य में स्थान-स्थान पर चक्रवर्ती साम्राज्य की स्थापना की प्रार्थना वेदमंत्रों में की है, उनके या सत्यार्थप्रकाश के विदेशी शासन के विरोध समबन्धी अन्य प्रसंगों का मैं उल्लेख करके अपने वक्तव्य को बोझिल नहीं बनाना चाहता। पर मैं आर्यसमाज को मात्र धार्मिक संस्था कहकर धर्म के अफीम वाले रूप से जनता को राष्ट्रचेतना से दूर से दूर रखने का प्रयत्न करने वाले, धर्म के कर्मकाण्ड-प्रधान रूप पर निरंतर जोर देने वाले और उसी में अपनी इतिकर्तव्यता समझने वाले धर्मध्वजियों से पूछना चाहता हूँ कि यदि ऐसी ही बात थी तो सत्यार्थप्रकाश में छठे समुल्लास को रखने का क्या औचित्य था-जिसमें राज्य और शासन के ही विभिन्न पहलुओं पर विचार किया गया है? एकादश समुल्लास के अन्त में महाभारत से लेकर पृथ्वीराज पर्यन्त राजाओं की नामावली देने की कौन-सी संगति है? जीवन के अन्तिम दिनों में राजस्थान की विभिन्न रियासतों में जाकर राजाओं को वैदिक और भारतीय राजनीति की शिक्षा देने और उनसे राजकुमारों तथा क्षत्रिय बालकों को शस्त्रास्त्र की शिक्षा देने के लिए क्षात्रशाला खोलने का आग्रह करने की क्या तुक है?

महाकवि भारवि ने लिखा है-

ज्वलितं न हिरण्यरेतसं चयमास्कन्दति भस्मनां जनः।
अभिभूतिभयादसूनतः सुखमुझ्झन्ति न धाम मानिनः।।

'राख के ढेर को सब लांघ जाते हैं, पर स्वर्णसन्निभ तेज से जाज्वल्यमान अग्निपुञ्ज को कोई लांघने की हिम्मत नहीं कर सकता। इसलिए स्वाभिमानी राष्ट्रचेता अपने प्राण, भले ही आसानी से छोड़ दें, परन्तु अपने तेज को नहीं छोड़ते।'

अन्य राष्ट्रचेताओं में किसी में कोई चिनगारी दिखेगी, किसी में कोई। किसी में स्वधर्म की चिनगारी, किसी में स्वदेश और स्वराज्य की, किसी में स्वभाषा और स्वसंस्कृति की। परन्तु स्वधर्म, स्वभाषा, स्वदेश, स्वराज्य आदि शब्दों में जो 'स्व' छिपा है, उसका गौरव ऋषि की राष्ट्रचेतना में निहित है-वैसा इकट्ठा, पुञ्जीभूत जाज्वल्यमान अग्निपुञ्ज और कहीं दिखाई नहीं देता।

(वक्तव्य के शुरू में) मुक्ति सम्बन्धी आत्मा की शाश्वत ललक की जो चर्चा की गई है, वही है असली स्वाधीनता, स्व का चरम विकास, आत्मचेतना का राष्ट्रचेतना में परिपाक। इस अवस्था में एकान्त योग-साधना में भी स्वार्थ और संकीर्णता की गन्ध आने लगती है और परार्थ के लिए जीवन पूर्णतः उत्सर्ग हो जाता है। यही कारण है कि इस अग्निपुञ्ज राष्ट्रचेतना का तेज उन लोगों को सहन नहीं हुआ, जो स्वाधीनता के सही मर्म को न समझकर विदेशी दासता में सुखोपभोग को जीवन की सार्थकता समझते थे। इसलिए वे सब के सब सम्मिलित होकर इस अग्निपुञ्ज को बुझाने को दौड़े। इनमें हिन्दू भी थे, मुसलमान भी, ऋषि के बहुत से बनावटी भक्त पर अंग्रेजों के प्रच्छन्न गुप्तचर भी, और जिनकी दासता के विरुद्ध यह राष्ट्रचेतना सबसे अधिक

उग्र रूप में उबल रही थी, वे अंग्रेज तो इसमें शामिल थे ही। आखिर उन सबने मिलकर षड्यन्त्र किया और ऋषि को विष देकर उनके प्राणान्त से इन षड्यन्त्रकारियों को शान्ति मिली। ऋषि तो 'हे ईश्वर! तेरी इच्छा पूर्ण हो, अहा! तूने अच्छी लीला की'–कहकर इस असार संसार से विदा हो गए, पर अपने अग्निपुञ्ज की विरासत अपने अनुयायियों के लिए छोड़ गए।

अपने जीवन की एक वैयक्तिक घटना का उल्लेख करूँ तो आप पुरा नहीं मानेंगे। सन् 31 की बात होगी। मैं गुरुकुल कुरुक्षेत्र की सातवीं कक्षा में पढ़ता था। उस समय गुरुकुल के वार्षिकोत्सव पर हम सब विद्यार्थी अच्छे-अच्छे वेदमंत्र, संस्कृत के श्लोक और हिंदी के दोहों तथा सूक्तियों के 'मोटो' बनाकर पंडाल में सजावट के लिए टांगा करते थे। मुझे पता नहीं क्या सूझी कि मैंने एक 'मोटो' अंग्रेजी में बनाया। उससे पहले गुरुकुल में शायद ही किसी ने अंग्रेजी का मोटो बनाया हो। वह मोटो था अब्राहम लिंकन का अमर वाक्य–'If slavery is not wrong, nothing is wrong.'–यदि गुलामी पाप नहीं है तो कुछ भी पाप नहीं है। यह मोटो बनाकर उत्सव से पूर्व-संध्या को मैंने मंच पर सबसे आगे लगा दिया। अगले दिन जब अम्बाला के अनेक रायबहादुर और ब्रिटिश सेवा में नियुक्त गुरुकुल के हितैषी दानी महानुभाव उत्सव में आए और उनकी दृष्टि इस मोटो पर पड़ी तो सबसे पहला काम उन्होंने यहीं किया कि उस मोटो को वहाँ से हटा दिया और अधिकारियों से उस ब्रह्मचारी को गुरुकुल से निकाल देने की माँग की, जिसने ऐसी गुस्ताखी की थी। अस्तु, मुझे परिस्थितिवश गुरुकुल से निकाला तो नहीं गया, पर तभी से मेरे मन में यह धारणा बैठ गई कि ब्रिटिश राज्य को बनाए रखने में अपने आकाओं से भी ज्यादा उत्साही वे भारतीय थे जिनके उस राज्य से स्वार्थ सिद्ध होते थे। तभी से मेरे मन में उनके प्रति तीव्र आक्रोश भर गया।

कुछ लोग ऋषि के अखंड ब्रह्मचर्य पर मुग्ध हैं। महात्मा गांधी कहा करते थे–'His brahmacharya is my envy and failure'–उनका ब्रह्मचर्य मेरे लिए ईर्ष्या की वस्तु है, पर मैं उसमें विफल हूँ। कुछ लोग उनकी वाग्मिता और शास्त्रार्थ-पटुता पर मुग्ध हैं। कुछ लोग उन्हें परम वेदोद्धारक और प्रबल समाज सुधारक कहकर संतुष्ट होते हैं, तो कुछ उन्हें अबलाओं और अनाथों का रक्षक कहकर उनकी प्रशंसा के गीत गाते हैं। पर मैं उनकी उस प्रखर राष्ट्रचेतना पर मुग्ध हूँ जो उन्हें अन्य सब महापुरुषों से एकदम अलग, पर्वत-शिखरों में सबसे पृथक् और सबसे ऊँचा शिखर सिद्ध करती है। मुझे उनका वेदोद्धारक और समाज सुधारक आदि रूप भी स्वीकार्य हैं, क्योंकि उनका जीवन इतना बहु-आयामी है कि किसी एक दिशा में उसे बाँधा नहीं जा सकता। पर जहाँ तक राष्ट्रचेतना का प्रश्न है, उनसे बढ़कर आप्त राष्ट्रपुरुष मुझे दिखाई नहीं देता–जिसने राष्ट्र की पूरी अस्मिता को, पूर्ण स्व को, आत्मसात् किया हो–फिर चाहे वह देश वाला रूप हो, चाहे राष्ट्रवाला, चाहे राज्य वाला–और उसे पूरा शास्त्रीय आधार प्रदान किया हो। उन्होंने राष्ट्र का पूरा मानचित्र (ब्लूप्रिंट) तैयार कर दिया है, अब उसमें रंग भरने वाले की आवश्यकता है। मेरा कहना केवल इतना है कि आर्यसमाज के तम्बू में एक बांस बेशक वेद और धर्म का लगाइए, दूसरा बांस समाज-सुधार का और तीसरा अबला- अनाथ रक्षा का और चौथा पाण्डित्य और शास्त्रार्थ का, पर तम्बू के बीचो-बीच सबसे मोटा बांस राष्ट्रचेतना का लगा दीजिए। इसके बिना ऋषि की आत्मा के साथ न्याय नहीं होगा।

स्वामी सत्यानन्दजी 'श्रीमद्दयानन्द प्रकाश' की भूमिका के अन्त में लिखते हैं- 'स्वामी जी महाराज पहले महापुरुष थे जो पश्चिम देश के मनुष्यों के गुरु कहलाये.... जिस युग में स्वामी जी हुए उससे कई वर्ष पहले से आज तक ऐसा एक ही पुरुष हुआ है जो विदेशी भाषा नहीं जानता था, जिसने स्वदेश से बाहर एक पैर भी नहीं रखा था, जो स्वदेश के ही अन्न-जल से पला था, जो विचारों में स्वदेशी था, आचारों में स्वदेशी था, भाषा और वेश में स्वदेशी था, परन्तु वीतराग और परम विद्वान होने से सबका भक्ति-भाजन बना हुआ था..... महाराज निरपेक्षभाव से समालोचना किया करते थे। सब मतों पर टीका- टिप्पणी चढ़ाते। परन्तु इतना करने पर भी उनमें कोई ऐसी अलौकिक शक्ति और कई ऐसे गुण थे जिनके कारण वे अपने समय के बुद्धिमानों के सम्मान पात्र बने हुए थे..... महाराज के उत्तम जीवन की घटनाओं का पाठ करते समय हमें तो ऐसा प्रतीत होने लगता है कि आज तक जितने भी महात्मा हुए हैं उनके जीवन के सभी समुज्ज्वल अंश दयानन्द में पाये जाते थे। वह गुण ही न होगा जो उनके सर्व सम्पूर्ण रूप में विकसित न हुआ हो।'––
(17 सितंबर, 1991, क्षितीश ग्रंथावली खण्ड 1 से)

●**सिद्धार्थ मलिक, छात्र,**
महर्षि दयानंद सरस्वती युनिवर्सिटी, अजमेर, राजस्थान

ऋषि बलिदान दिवस सन्दर्भ

गौरक्षा से स्वराज्य तक महर्षि दयानन्द के पत्रों का संदेश

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी अपने समय में वेदों के प्रकाण्ड विद्वान् रहे हैं। उन्होंने अपने जीवनकाल में अनेक ग्रंथों की रचना की जिनमें उन्होंने वेद से लेकर ऋषि-महर्षियों के मत का यथार्थ प्रकाश किया है। महर्षि दयानन्द जी के ग्रंथों को पढ़ने से हमें उनके दार्शनिक मत का पता चलता है तथा उनकी वेदभक्ति तथा ऋषि भक्ति का भी परिचय मिलता है। जहाँ ऋषि के दार्शनिक मत का अवलोकन करने से हमें उनकी वेदभक्ति का ज्ञान होता है वहीं उनके व्यक्तिगत जीवन का अवलोकन करने से उनके राष्ट्रप्रेम तथा उनकी दूरदृष्टि का ज्ञान होता है।

ऋषि के व्यक्तिगत जीवन को जानने के लिए सबसे उपयोगी सामग्री उनके पत्र व्यवहार तथा उनकी जीवनी है। आर्य जनता अधिकतर उनके जीवन को जानने के लिए उनकी जीवनी का ही सहारा लेती है तथा पत्र व्यवहार का सहारा केवल कुछ जिज्ञासु ही लेते तथा केवल शास्त्रार्थों मे ऋषि के पक्ष को सिद्ध करने के लिए ही उनके पत्रों का सहारा लिया जाता है। परंतु अगर हम ऋषि के पत्रों का अच्छे प्रकार से अवलोकन करें तो हमें उनकी स्वराष्ट्र भक्ति तथा दूरदृष्टि का परिचय मिलता है तो दूसरी ओर बहुत-सी सैद्धांतिक बातें भी स्पष्ट होती हैं जिनमें से बहुत-सी उनकी पुस्तकों से भिन्न तथा आर्य जनता के लिए भी अत्यंत उपयोगी साबित हो सकती हैं। उनमें से कुछ बातों का प्रकाश करने का प्रयास करता हूँ।

श्यामजी कृष्ण वर्मा को देश की स्थिति तथा वैदिक सिद्धांतों का पार्लियामेंट में प्रकाश करने हेतु पत्र-

महर्षि दयानंद जी श्यामजी कृष्ण वर्मा को एक पत्र यवन लोगों के अन्याय को लेके पार्लियामेंट में न्याय हेतु व्याख्यान देने के लिए लिखते हैं-

'सज्जन सभा पार्लियामेंट में जाकर वैदिक सिद्धान्तानुकूल व्याख्यान देकर उन्हें (सभासदों को) भारतवर्षीय प्राचीन लोगों के शास्त्रानुकूल नियमों से परिचित कराओ। जिससे वे अपनी आँखों से दु:खियों के इस प्रकार के दु:ख को देखें। म्लेच्छ लोग निकृष्ट आचरण से भारतीय जनों को पीड़ित कर रहे हैं।

यवन लोगों का मत है कि अपने धर्मानुकूल व्यक्ति ही सब लोगों में श्रेष्ठ तथा उत्तम कर्म करने वाला है, अन्य नहीं। इस मत को मन में रखकर अत्यन्त उत्कण्ठित वे सदा वेदपथगामी जनों का उच्छेद चाहते हैं। मुरादाबाद निवासी वेदपथानुयायी मुंशी इन्द्रमणि वैदिक आचार से प्रसिद्ध हैं तथा यवन मत के खण्डन में व्यस्त हैं। यवनकृत सम्मान के कारण मजिस्ट्रेट ने उस (इन्द्रमणि) के दो ग्रन्थों पर प्रतिबन्ध लगा दिया और पांच सौ रुपये जुर्माना कर दिया। जब उस की अपील जज के न्यायालय में पहुंची तो जज ने अपने यत्न से चार सौ छोड़ कर मजिस्ट्रेट के द्वारा किये गये न्याय को अनेक प्रकार स्वीकार कर लिया। यहाँ राज्यकार्यों में नियुक्त लोग राज्यप्रबन्ध के कार्यों में सदा प्रमादी और प्रभाव के कारण विशेष रूप से स्वार्थ में संलग्न रहते हैं। कुछ लोग परोपकार में भी तत्पर हैं। जो म्लेच्छ लोग हैं, उनके विषय में कुछ कहने से भी दु:ख का अनुभव होता है। जब तक इनमें 'मनु' द्वारा उक्त दण्डविधान लागू नहीं होगा, तब तक ये उत्तम न्याय में तत्पर नहीं होंगे।

अपितु धर्म कार्यों में अपनी भ्रान्त मति को प्रकट करते हैं। ये अल्प बुद्धि वाले, ईर्ष्यालु, अत्यन्त लोभी तथा बड़े उपद्रव कर्म करने वाले हैं। पार्लियामेण्ट संसद में यह सब इस प्रकार कहो कि जिस से व्याख्याता के दृष्टान्त तथा सिद्धान्त में कोई वैपरीत्य न हो। [द्र.- महर्षि के पत्रव्यवहार और विज्ञापन पूर्ण संख्या- 470]

शूद्रों को संध्योपासन करने हेतु पत्र-

'संध्योपासन और गायत्र्यादि [जप] नित्यकर्म द्विजों अर्थात् तीनों वर्णों के लिए एक ही हैं। तीनों वर्ण गुण

कर्मों से माने जायेंगे, जन्म से नहीं। शूद्र जो विद्यादि गुणों से हीन है इस कारण से उसे संध्योपासन नहीं आ सकता। इसलिए वेद के किसी मन्त्र को याद करके जपा करे।' [द्र.- महर्षि के पत्रव्यवहार और विज्ञापन पूर्ण संख्या-570]

इस पत्र से ज्ञात होता है कि स्वामी जी के वैदिक मत में शूद्र को भी संध्या करने का अधिकार है परंतु अगर वह गायत्र्यादि सब मंत्र याद न कर सके तो केवल एक या दो मन्त्र याद करके संध्या कर सकता है। स्वामी जी ने जो सत्यार्थ प्रकाश तृतीय समुल्लास में लिखा 'शूद्र को मन्त्र संहिता छोड़ सब पढ़ावें।' वह इसी अभिप्राय से कहा है, न कि शूद्र के अधिकार को छीनने हेतु। तथा यहाँ से 'शूद्रादि वर्ण कर्म से होते हैं', यह भी स्वतः सिद्ध है।

महर्षि दयानन्द का वेद विषयक मत-

'वेदों के विषय में मेरा यह विश्वास है कि चारों वेदों में एक भी वाक्य ऐसा नहीं, जिसको मैं नहीं मानता हूं।' [महर्षि के पत्र व्यवहार और विज्ञापन पूर्ण संख्या-192]

बहुत से आर्य विद्वान् यह मानते हैं कि स्वामी जी अर्थववेदीय कुन्ताप सूक्त को प्रक्षिप्त मानते हैं तथा वेदों का भाग नहीं मानते। परंतु इस पत्र से स्पष्ट ज्ञात होता है कि स्वामी जी वेदों को शुद्ध ही मानते थे तथा उनमें कोई भी प्रक्षेप नहीं मानते थे।

ऋषि दयानंद का गौरक्षा आंदोलन

मंत्री आर्यसमाज दानापुर आनन्दित रहो! मैं आप परोपकार प्रिय धार्मिक जनों को सब जगत् के उपकारार्थ गाय, बैल और भैंस की हत्या के निवारणार्थ दो पत्र- एक तो सही करने (सही का अर्थ हस्ताक्षर है) का और दूसरा जिस के अनुसार सही करनी है- दो पत्र भेजता हूँ। इसको आप प्रीति और उत्साहपूर्वक स्वीकार कीजिये, जिस से आप महाशय लोगों की कीर्ति इस संसार में सदा विराजमान रहे। इस काम को सिद्ध करने का विचार इस प्रकार किया गया कि 20000000 (दो करोड़) से अधिक राजे-महाराजे और प्रधान आदि महाशय पुरुषों की सही कराके आर्यवर्तीय श्रीमान् गवरनर जनरल साहेब बहादुर से इस विषय की अर्जी करके उपरि लिखित गाय आदि पशुओं की हत्या छुड़वा देना। मुझ को दृढ़ निश्चय है कि प्रसन्नता पूर्वक आप लोग इस महोपकारक कार्य को शीघ्र करेंगे। अधिक प्रति भेजने का प्रयोजन यह है कि जहाँ-जहाँ उचित समझें वहाँ-वहाँ भेजकर सही करा लीजिये। पुनः नीचे लिखित स्थान में रजिष्टरी कराके भेज दीजिये। [द्र.- महर्षि के पत्रव्यवहार और विज्ञापन पूर्ण संख्या- 624]

ऊपर लिखित पत्र से महर्षि के गौ आदि प्राणियों के हित तथा उनके हत्या को रोकने हेतु प्रयास का सहसा अनुमान होता है तथा इससे यह भी ज्ञात होता है कि स्वामीजी आजकल के तथाकथित धर्म गुरुओं जैसे नहीं थे कि जो केवल समस्या बताने पर विश्वास रखते हैं, अपितु स्वामी जी समस्या को समाधान द्वारा हल करने वालों में से थे। परंतु दुर्भाग्य इस आर्यावर्त देश का कि वह कार्य सफल न हो सका तथा आज भी गौ तथा भैंस आदि प्राणियों का कत्ल खुले आम चल रहा है तथा कोई रोकने वाला नहीं। हम सबको पुनः इस महान् कार्य को पूर्ण करने के लिए प्रयासरत होना होगा।

थियोसोफिस्टों का खंडन तथा देश हितार्थ पत्र-

'देखो, स्वामी जी ने अनेक वार इस बात के करने से रोका कि तुम थियोसोफिस्ट समाचार में भूत, प्रेत, पिशाच आदि का होना लिखते हो, यह विद्या के विरुद्ध व असम्भव है और जो बातें विद्या से विरुद्ध हैं उनको मत लिखो, क्योंकि यह समाचार इस देश और यूरोप में भी जाता है। सब लोग जान जायेंगे कि आर्यावर्त देश में ऐसी ही व्यर्थ बातों के मानने वाले हैं। इस बात को अब तक नहीं माना।' [द्र.- महर्षि के पत्रव्यवहार और विज्ञापन पूर्ण संख्या- 648]

यह पत्र थियोसोफिस्टों की गोलमाल पोलपाल के नाम से छपा था। यह स्वामी जी की आज्ञा के अनुसार लिखा गया था। यह पत्र स्वामीजी की बुद्धिमत्ता को दर्शाता है। आजकल बहुत से भारतीय पाश्चात्य लोगों के गुणों की बहुत प्रकार से सराहना करते हैं तथा अपने देश की बुरी बातों का प्रकाश करते है तथा अच्छी बातों को दबा देते हैं जबकि म्लेच्छ इसका उल्टा व्यवहार करते है और अपनी बुरी बातों को नहीं बताते तथा अच्छी बातों का प्रकाश ही करते जाते हैं। भारतीय लोगों को ऋषि की इस बात पर अवश्य ध्यान देना चाहिए क्योंकि अपने देश की छवि की जिम्मेदारी उस देश के वासियों के कंधों पर ही होती है।

वृक्षों में जीव विषयक समाधान-

[प्रश्न] 'एक वृक्ष में एक ही जीव होता है न अनेक।'
[समीक्षा] जो एक वृक्ष में एक जीव होता तो प्रत्येक जीव [वृक्ष] में पृथक् पृथक् जीव कहां से आते और किसी वृक्ष की डाली काट कर लगाने से जम जाता है उसमें जीव कहाँ

से आया, इसलिये एक वृक्ष में अनेक जीव होते हैं। [द्र.- महर्षि के पत्रव्यवहार और विज्ञापन पूर्ण संख्या- 693, पृष्ठ- 772 से उद्धृत]

वृक्षों में जीव के होने वाला विषय सदा से ही विवाद में रहा है। इस विषय में आर्यसमाज तथा पौराणिक समाज दोनों में अनेक शास्त्रार्थ भी हुए है परंतु इस विषय में शंकाएं फिर भी ज्यों की त्यों बनी रहीं। अन्त में वृक्षों में जीवन होना 'श्री जगदीश चंद्र बोस' ने 1901 में सिद्ध किया था, परंतु आर्य लोग मानते हैं कि हमारे ऋषि तथा महर्षि दयानंद ने पहले से इस विषय पर अनेक समाधान बताए है, परन्तु आर्य लोगों के पास ऋषि द्वारा किए बस कुछ एक संकेत ही प्राप्त होते हैं, उनमें से एक ऊपर लिखित पत्र है। परंतु स्वामीजी ने अपने सत्यार्थ प्रकाश के प्रथम संस्करण में इसी विषय को विस्तार से सिद्ध किया है। जैन लोग वृक्षों में केवल एक इन्द्रिय मानते हैं, परन्तु महर्षि दयानन्द के अनुसार यह विचार त्रुटिपूर्ण है। वृक्षों के अंकुर का ऊपर-नीचे बढ़ना, लताओं का सहारे की ओर बढ़ना, मीठे-खारे जल का भेद जानना, शब्द से काँपना, गन्ध और स्पर्श पर प्रतिक्रिया देना-ये सब प्रमाण हैं कि उनमें नेत्र, जीभ, श्रोत्र, नासिका और त्वचा जैसी इन्द्रियाँ विद्यमान हैं। स्थूल रूप से न दिखने के कारण जैन इन्हें नहीं मानते, परन्तु कार्य के आधार पर स्पष्ट है कि वृक्षादि में अनेक इन्द्रियाँ और जीवन शक्ति होती है। यह विषय सत्यार्थ प्रकाश प्रथम संस्करण समुल्लास 12 जैन मत खंडन से उद्धृत किया है।

उपसंहार

मैंने यहां कुछ एक विषय ही पत्र व्यवहार से उद्धृत किए हैं। बहुत से सैद्धांतिक तथा ऋषि जीवन विषयक अनमोल रत्न 'महर्षि के पत्र व्यवहार और विज्ञापन' से मिल सकते हैं। इसके पढ़ने से ऋषि के वास्तविक तथा अलग ही व्यक्तित्व से परिचित होने का लाभ मिलेगा। अत: सब आर्यो को ऋषि के पत्रव्यवहार के अध्ययन करने का प्रयास करना चाहिए तथा उसकी महत्ता को समझने को अत्यन्त परिश्रम तथा पुरुषार्थ करना चाहिए। महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन और उनका पत्रव्यवहार यह स्पष्ट करते हैं कि वे केवल सिद्धांतों के विद्वान् नहीं थे, बल्कि राष्ट्रभक्त, दूरदर्शी और समाज सुधारक भी थे। उनके पत्रों से पता चलता है कि उन्होंने देश की परिस्थितियों, न्याय, वैदिक सिद्धांत, समाज सुधार और प्राणियों के संरक्षण के विषय में स्पष्ट और ठोस दृष्टिकोण अपनाया। उन्होंने वैदिक सिद्धांतों को केवल ग्रंथों तक सीमित नहीं रखा, बल्कि उन्हें व्यावहारिक जीवन और सामाजिक सुधार में उतारा।

गौरक्षा, शिक्षा, कौशल विकास, वृक्षों में जीवन और उनके इन्द्रिय, शूद्रों के संध्योपासन अधिकार और विदेशी प्रभावों के प्रति उनकी संवेदनशीलता-ये सभी पहलू उनके दृष्टिकोण की व्यापकता को दर्शाते हैं। महर्षि ने पारंपरिक रीति-रिवाजों और जैन या पौराणिक मतों की तुलना में वैदिक दृष्टिकोण को वैज्ञानिक और व्यावहारिक प्रमाणों के आधार पर स्पष्ट किया। उनके पत्र केवल व्यक्तिगत संवाद नहीं, बल्कि समाज, देश और धर्म के प्रति उनके उत्तरदायित्व के परिचायक हैं। उनके पत्रव्यवहार का अध्ययन हमें यह सिखाता है कि व्यक्तिगत ज्ञान, नैतिकता और समाजसेवा के बीच गहरा समन्वय स्थापित किया जा सकता है। आज के संदर्भ में यह अध्ययन युवाओं, विद्वानों और समाज सुधारकों के लिए मार्गदर्शक बन सकता है।

(पते : महर्षि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन : रामलाल कपूर ट्रस्ट : चतुर्थ संस्करण : अक्तूबर सन् 1993/1996 के आधार पर)

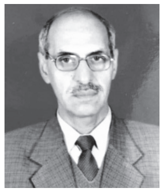

प्रेरक-वचन

सेवासिंह वर्मा, पूठ खुर्द,
नई दिल्ली (9958594981)

◆विश्वास उस पर करें जो आपके बारे में तीन बातें जान सके- हंसी के पीछे का कष्ट, क्रोध के पीछे का प्रेम और आपके चुप रहने का कारण।

◆कुछ तो सहन करना सीखना ही चाहिए क्योंकि हम में भी ऐसी बहुत कमियाँ हैं जिन्हें दूसरे सहन करते हैं! सहनशीलता एक ऐसा आभूषण है जिसे धारण करने पर अनावश्यक मानसिक तनाव, उच्च रक्तचाप, अवसाद, आलस्य, अनिद्रा आदि रोग दूर होते हैं।

◆विश्वास हो तो बिना कहे ही सारी बात समझ आ जाती है। विश्वास न हो तो हर शब्द का अर्थ गलत लगता है। विश्वास के बिना कोई भी संबंध स्थिर नहीं रह सकता।

◆क्रोध भी तब 'पुण्य' बन जाता है जब वह 'धर्म' और 'मर्यादा' के लिए किया जाए और 'सहन शीलता' भी तब पाप बन जाती है जब वह 'धर्म' और 'मर्यादा' को बचाने का प्रयत्न ही नहीं करती।

●कार्तिक अय्यर (सहा. प्राध्यापक संस्कृत IHU)
Email- kartikiyer76@gmail.com

पर्व-विशेष

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम और रावण का दुश्चरित्र

रामायण का संदेश स्पष्ट है—मनुष्य में चाहे रावण जैसा ज्ञान, वैभव और सामर्थ्य ही क्यों न हो, यदि वह अहंकार, आसक्ति और अन्याय में डूब जाए तो उसका पतन निश्चित है। वहीं, यदि श्रीराम की तरह सत्य, धर्म, धैर्य और करुणा का पालन किया जाए तो व्यक्ति केवल महान ही नहीं, युगों-युगों तक पूजनीय बन जाता है।

श्रीराम : धर्म, नीति और आदर्श का स्वरूप

श्रीराम केवल एक आदर्श पुरुष ही नहीं थे, बल्कि धर्म, सत्य, नीति और गुणों की मूर्ति थे। रामायण में उनके रूप, स्वभाव और आचरण ने ही उन्हें 'मर्यादा पुरुषोत्तम' का दर्जा दिया।

वाल्मीकि रामायण में उनका परिचय इस प्रकार मिलता है- राम का जन्म इक्ष्वाकु वंश में हुआ था। उनका नाम सब लोगों में प्रसिद्ध था। वे संयमी, महान पराक्रमी, तेजस्वी, धैर्यशील और इन्द्रियों को वश में रखने वाले थे। राम बुद्धिमान्, नीति का पालन करने वाले, मधुर भाषी, श्रीसम्पन्न और शत्रुओं का नाश करने वाले थे। उनका शरीर अत्यंत सुंदर और बलवान था-विस्तृत भुजाएँ, शंख जैसी गर्दन और चौड़ा जबड़ा था।

श्रीराम वेद और वेदाङ्ग के तत्त्वज्ञानी थे तथा धनुर्वेद में विशेष निपुण थे। सभी शास्त्रों के अर्थ और तत्त्व को जानते थे, स्मरणशक्ति सम्पन्न और प्रतिभाशाली थे। श्रीराम धर्म के गहन ज्ञाता, सत्यपालक और प्रजा हितैषी थे। वे यशस्वी, ज्ञानवान्, संयमी और विवेकी होकर शत्रु-विनाशक एवं धर्मरक्षक बने। वे वेद-वेदाङ्ग और धनुर्वेद में निपुण, स्मरणशक्ति और प्रतिभा से सम्पन्न थे तथा सभी को प्रिय, सदैव सज्जनों के आश्रयदाता और समान व्यवहार करने वाले थे।

गाम्भीर्य में समुद्र, धैर्य में हिमालय, वीर्य में विष्णु, सौम्यता में चन्द्रमा, क्रोध में कालाग्नि, क्षमा में पृथ्वी और दानशीलता में कुबेर के समान, वे सभी गुणों से युक्त होकर कौसल्या के आनन्दवर्धन और दशरथ के प्रिय ज्येष्ठ पुत्र थे, जो प्रजा के सच्चे हितकारी और सत्य पराक्रमी पुरुषोत्तम कहलाए।

स हि रूपोपमन्नश्च वीर्यवानसूयकः।
भूमावनुपमः सूनुर्गुणैर्दशरथोपमः ।९।
कदाचिदुपकारेण कृतेतैकेन तुष्यति।
न स्मरत्यपकाराणां शतमप्यात्यत्तया ।11।

(वाल्मीकि रामायण, बालकांड, प्रथम सर्ग)

अर्थात् श्रीराम बड़े ही रूपवान और पराक्रमी थे। वे किसी में दोष नहीं देखते थे। भूमंडल में उनके समान कोई न था। वे गुणों में अपने पिता के समान तथा योग्य पुत्र थे।। 9।। कभी कोई उपकार करता तो उसे सदा याद करते तथा उसके अपराधों को याद नहीं करते।11 (अ. काण्ड 1 सर्ग)

आगे संक्षेप में इसी सर्ग में वर्णित श्रीराम के गुणों का वर्णन करते हैं। (देखिये श्लोक 12-34।)

इनमें श्रीराम के अग्रलिखित गुण वर्णित हैं-

1. अस्त्र-शस्त्र के ज्ञाता। महापुरुषों से बात कर उनसे शिक्षा लेते थे।
2. बुद्धिमान, मधुरभाषी तथा पराक्रम पर गर्व न करने वाले।
3. सत्यवादी, विद्वान, प्रजा के प्रति अनुरक्त; प्रजा भी उनको चाहती थी।
4. परम दयालु, क्रोध को जीतने वाले, दीनबंधु।
5. कुलोचित आचार व क्षात्रधर्म के पालक।
6. शास्त्र विरुद्ध बातें नहीं मानते थे, वाचस्पति के समान तर्कशील।
7. उनका शरीर निरोग था (आमिष-भोजी का शरीर निरोग नहीं हो सकता), तरुण अवस्था। सुंदर शरीर से सुशोभित।
8. 'सर्वविद्याव्रतस्नातो यथावत् सांगवेदवित्'- संपूर्ण विद्याओं में प्रवीण, षडंग वेद पारगामी। वाणविद्या में अपने पिता से भी बढ़कर।
9. धर्मार्थकाममोक्ष का यथार्थज्ञान था, प्रतिभाशाली थे।
10. विनयशील, गुरुभक्त, आलस्य रहित थे।
11. धनुर्वेद में सब विद्वानों से श्रेष्ठ।

कहां तक वर्णन किया जाये? वाल्मीकि जी ने तो यहां तक कहा है कि 'लोके पुरुषसारज्ञः साधुरेको विनिर्मितः।' (वही सर्ग श्लोक 18)

अर्थात् उन्हें देखकर ऐसा जान पड़ता था कि संसार में विधाता ने समस्त पुरुषों के सारतत्त्व को समझने वाले साधु पुरुष के रूप में एकमात्र श्रीराम को ही प्रकट किया है।

रावण का चरित्र : वाल्मीकि रामायण के प्रमाण

पौलस्त्य वंश में जन्मे रावण का नाम ही राक्षसों के इतिहास में अपनी विशिष्ट पहचान रखता है। वाल्मीकि रामायण में उसका परिचय अत्यंत बलशाली और महावीर्यवान् राक्षस के रूप में मिलता है। ब्रह्मा से प्राप्त वरदान ने उसे असाधारण अजेयता दी और अनेक राक्षसों के साथ मिलकर वह तीनों लोकों में अत्याचार फैलाने लगा। उसकी शक्ति और पराक्रम ने न केवल मनुष्यों, बल्कि देवताओं और ऋषियों को भी चुनौती दी।

इतना ही नहीं, रावण की पारिवारिक और कुलीन पृष्ठभूमि भी अद्वितीय थी। वह महर्षि विश्रवा का पुत्र और धनपति कुबेर का भाई था। इस प्रकार उसके व्यक्तित्व में दैत्यबल और ब्राह्म विद्या का अनोखा संगम देखने को मिलता है। जन्मजात सामर्थ्य और विद्या उसे केवल बलशाली नहीं बनाती, बल्कि उसका अहंकार और अधर्म इस शक्ति को विनाशकारी दिशा में मोड़ देते हैं।

रावण केवल प्रत्यक्ष रूप से ही नहीं, बल्कि परोक्ष रूप से भी यज्ञ-विघ्न और अन्य धर्मकर्मों में बाधा डालता था। जब स्वयं यज्ञ-विघ्न के लिए उपस्थित नहीं होता, तब भी उसकी आज्ञा से महाबली मारीच और सुबाहु यज्ञों को नष्ट करने जाते थे।

यह दिखाता है कि रावण का अधर्म केवल व्यक्तिगत लालसा तक सीमित नहीं था, बल्कि वह सामाजिक और धार्मिक संरचना के लिए भी खतरा था।

(रामायण अयोध्या कांड श्लोक 16-19)

अनेक स्त्रियों का हरण :

रावण का व्यक्तित्व केवल विद्वता और पराक्रम तक सीमित नहीं था। वाल्मीकि रामायण में उसे परस्त्रीगमन और बलपूर्वक वासनाओं की पूर्ति करने वाला चित्रित किया गया है। उसने अनेक स्त्रियों को अपने अहंकार और वासना के अधीन हरकर उनके अधिकारों का उल्लंघन किया, जिससे उसकी अधर्मपूर्ण प्रवृत्ति और स्पष्ट होती है। रावण संन्यासी का कपट वेश त्यागकर सीताजी से कहता है-

बह्वीनामुत्तमस्त्रीणामाहृतानामितस्ततः ।
सर्वासामेव भद्रं ते ममाग्रमहिषी भव॥ 28॥

(अरण्य., सर्ग 47/28)

'मैं यहाँ वहाँ से अनेक सुंदर-स्त्रियों को हरण करके ले आया। उन सबमें तू मेरी पटरानी बन, इसमें तेरी भलाई है।'

परस्त्रीगमन राक्षसों का धर्म :

रावण ने सीता से कहा- (सुंदर., सर्ग 20/5)

स्वधर्मो रक्षसां भीरु सर्वथैव न संशयः।
गमनं वा परस्त्रीणां हरणं संप्रमथ्य वा॥ 5॥

भीरू! दूसरों की स्त्रियों का हरण व परस्त्रियों से

भोग करना राक्षसों का धर्म है–इसमें संदेह नहीं।

मंदोदरि की गवाही

रावणवध के बाद मंदोदरि विलाप करती हुई कहती है–

धर्मव्यवस्थाभेत्तारं मायास्त्रष्टारमाहवे।
देवासुरनृकन्यानां आहर्तारं ततस्ततः॥ 53॥

(युद्धकांड, सर्ग 111)

आप (रावण) धर्म की व्यवस्था को तोड़ने वाले, संग्राम में माया रचने वाले और देवता, असुर तथा मनुष्यों की कन्याओं को यहां–वहां से हरण करने वाले थे।

बलात्कार और शाप

रावण ने, पुंजिकास्थलिका अप्सरा और नलकुबेर की पत्नी सहित अनेकों स्त्रियों से बलपूर्वक भोग किया। युद्धकांड (13.13–15) रावण ने पुंजिकास्थलिका से बलपूर्वक संभोग किया, तब ब्रह्मा ने उसे शाप दिया कि यदि आगे ऐसा किया तो उसका सिर फट जाएगा।

सीता पर कुदृष्टि और अंत

मंदोदरि रावण कि मृत्यु के बाद विलाप करते हुए कहती है–

ऐश्वर्यस्य विनाशाय देहस्य स्वजनस्य च।
सीतां सर्वानवद्याङ्गीं अरण्ये विजने शुभाम्॥ 22॥
अप्राप्य तं चैव कामं मैथिलीसंगमे कृतम्।
पतिव्रतायास्तपसा नूनं दग्धोऽसि मे प्रभो॥ 23 ॥

(युद्धकांड, सर्ग 111)

प्राणनाथ! सर्वांगसुंदरी सीता को छल से वन में हरकर लाना आपके लिए बड़ा कलंक था। मैथिली से संभोग करने की आपकी कामना पूरी न हो सकी; उल्टे आप उनकी पतिव्रता शक्ति से भस्म हो गए।

निष्कर्ष :

वाल्मीकि रामायण स्वयं साक्षी है कि श्रीराम धर्म, नीति, क्षमा और मर्यादा के प्रतीक थे, जबकि रावण व्यभिचारी, बलात्कारी, परस्त्रीगामी और अधर्मी था। रामायण का संदेश स्पष्ट है–मनुष्य में चाहे रावण जैसा ज्ञान, वैभव और सामर्थ्य ही क्यों न हो, यदि वह अहंकार, आसक्ति और अन्याय में डूब जाए तो उसका पतन निश्चित है। वहीं, यदि श्रीराम की तरह सत्य, धर्म, धैर्य और करुणा का पालन किया जाए तो व्यक्ति केवल महान ही नहीं, युगों–युगों तक पूजनीय बन जाता है। रावण और राम की यह तुलना हमें सिखाती है कि जीवन की सफलता केवल शक्ति या विद्वत्ता में नहीं, बल्कि उन्हें सही दिशा में उपयोग करने की क्षमता में है।

रावण न तो आदर्श भाई था, न कोई दलित–मसीहा या समाज सुधारक था। वाल्मीकि रामायण में उसका चरित्र यह स्पष्ट करता है कि वह केवल अपनी वासना, अहंकार और अधर्म के लिए विचलित था। उसकी विद्वत्ता, बल और कुलीनता भी उसे सही मार्ग पर नहीं ले गई थी, बल्कि इन्हीं गुणों का दुरुपयोग उसने परस्त्री हरण, बलात्कार और धर्मविरोधी कृत्यों में किया था। अंततः, रावण अहंकार का प्रतीक और श्रीराम आदर्श का प्रतीक बनकर मानव मन को यह प्रेरणा देते हैं कि अधर्म पर धर्म, असत्य पर सत्य और अहंकार पर मर्यादा सदा विजयी होती है।

बंदिनी

क्या एक स्त्री होना पाप है?
क्या वह केवल दीन-हीन,
कमजोर सी
एक आकृति भर है?
भावनाओं के नुकीले
पाश में जकड़ी हुई!
क्या उसकी भावनाएँ
उसके स्वाभिमान को कुचल देती हैं?

बड़े-बड़े ज्ञानी कहते हैं-
'स्त्री तो महान है!'
पर वह तो बस पीड़ा
और त्याग की प्रतीक है!
बस उसकी ममता को कोई
हल्के से छू भर ले-
और वह झुक जाती है।
सब कुछ लुटाकर
स्वयं को किसी के भी
चरणों में बिछा देती है।

क्या यही महानता है?
हो सकती है--
पर इतना क्रूर जीवन?
सच में- पाप ही तो है!

●**स्निग्धा मिश्र,** snigdhu99@gmail.com

●आचार्य रामफल सिंह आर्य, (9418277714)
2080, प्रथम तल, G ब्लॉक, सैक्टर 57, गुरुग्राम-122003

विद्या के बिना सुख नहीं

वेद की शिक्षाएं तो मानव को चरित्र की उस ऊंचाई पर ले जाने के लिये हैं जहाँ उसे सारा विश्व एक घोंसले के समान दिखाई देता है। सब प्राणियों में अपना आपा दिखाई देने लगता है।

ईश्वर ने वेद का ज्ञान मनुष्य को क्यों दिया? यदि वह यह ज्ञान न देता तो क्या होता? बहुत सारे लोगों के मन में यह विचार रहता है कि यदि ईश्वर यह ज्ञान न देता तो भी कोई बहुत बड़ी हानि न थी। मनुष्य धीरे-धीरे प्रकृति और अपनी क्रमिक उन्नति के आधार पर ज्ञान का विकास कर ही लेता। पशु-पक्षी भी तो अपना जीवन चला ही रहे हैं। उनको कौन सा वेद का ज्ञान मिला था? आज विज्ञान ने इतनी उन्नति कर ली है कि वेद की शिक्षाओं अथवा मंत्रों की कोई आवश्यकता ही नहीं रह गई है। केवल कुछ धार्मिक अनुष्ठानों में या कर्मकांड में ही मंत्रों का उपयोग देखा जाता है। वेद मंत्र ही क्या आज तो संस्कृत भाषा भी केवल कुछ गिने चुने लोगों तक ही सीमित रह गई है, वस्तुतः उसका भी कोई उपयोग नहीं रह गया है।

ये कुछ ऐसे ही प्रश्न हैं जैसे कोई किसी उच्च शिक्षित, संपन्न और प्रभावशाली व्यक्ति को देखकर यह कह दे कि इसने जो कुछ प्राप्त किया है सो अपनी योग्यता और बुद्धि से किया है, इसके लिये इसके माता-पिता या शिक्षकों की क्या आवश्यकता है? जैसा मूर्खतापूर्ण एवं हास्यास्पद यह विचार है वैसा ही उक्त विचार रखने वाले लोगों का भी है। केवल आज की स्थिति को देखकर ही यह समझ लेना कि सब कुछ अचानक हो गया है, अत्यन्त विचारहीनता है। वेद का ज्ञान कब दिया गया था? उत्तर है- सृष्टि के प्रारम्भ में। उस समय न कोई विद्यालय था, न शिक्षा, न शिक्षक, न राजा, न राज्य, न चिकित्सालय, न व्यापार, न सेना या पुलिस, न कोई फैक्ट्री, न नगर पालिका, न पंचायत अर्थात् कुछ भी न था। न कोई घर, न आज जैसा भोजन, न आज जैसे साधन। मनुष्यों और पशुओं में कुछ भी अन्तर न था, केवल आकृति भिन्न थी।

अब विचार करना चाहिए कि यदि उस समय वेद का ज्ञान ईश्वर न देता तो मनुष्य स्वभाव से क्या सीख पाता? उस समय की बात छोड़िये, यदि आज सारे विद्यालय, महाविद्यालय, अन्य शिक्षण संस्थान बंद कर दिये जाएं, कोई भी शिक्षक किसी प्रकार की शिक्षा देने वाला न रहे तो संसार की स्थिति कैसी हो जायेगी? इतनी उन्नति होने के पश्चात् भी शिक्षण संस्थानों की क्या आवश्यकता है? बस आपका उत्तर ही ऊपर के प्रश्नों का समाधान होगा।

एक बात और भी है कि क्या एक ही कक्षा में पढ़ रहे विद्यार्थियों का जीवन, उनके भोग्य साधन एक जैसे ही रहते हैं? यदि नहीं तो क्यों? क्योंकि सबकी विद्या का, ज्ञान का स्तर भिन्न है। जिसकी जितनी विद्या, उसको उतना सुख मिलता है। यही विचार हमारे आज के वेद स्वाध्याय का केन्द्र बिन्दु है। चलिये वेद की ओर चलते हैं। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के पांचवें सूक्त का देवता इन्द्र है। इस सूक्त में दस मन्त्र हैं, उन्हीं पर थोड़ा विचार करते हैं। प्रथम मन्त्र है-

आ त्वेता नि षीदतेन्द्रमभि प्रगायत।
सखायः स्तोमवाहसः॥

पदार्थ- हे (स्तोमवाहसः) प्रशंसनीय गुणयुक्त वा प्रशंसा कराने और (सखायः) सबसे मित्र भाव में वर्तने वाले विद्वान् लोगो- तुम और हम लोग सब मिलके परस्पर प्रीति के साथ मुक्ति और शिल्प विद्या को सिद्ध करने में (आनिषीदत) स्थित हों अर्थात् उसकी निरन्तर अच्छी प्रकार से यत्न पूर्वक साधना करने के लिये (इन्द्रम्) परमेश्वर वा बिजली से जुड़ा हुआ वायु को 'इन्द्रेण वायुना' इस ऋग्वेद के प्रमाण से शिल्प विद्या और प्राणियों के जीवन से इन्द्र शब्द के स्पर्श गुण वाले वायु का भी ग्रहण किया है (अभि प्रगायत) अर्थात् उसके गुणों का उपदेश करें और सुनें कि जिससे वह

अच्छी रीति से सिद्ध की हुई विद्या सबको प्रकट हो जावे (तु) और उसी से तुम सब लोग सब सुखों को (ऐत) प्राप्त होओ।

भावार्थ : जब तक मनुष्य हठ, छल और अभिमान को छोड़कर सत्य प्रीति के साथ परस्पर मित्रता करके परोपकार करने के लिए तन, मन और धन से यत्न नहीं करते, तब तक उनके सुखों और विद्या आदि उत्तम गुणों की उन्नति कभी नहीं हो सकती।

इस वर्णन से बहुत सारी बातें स्पष्ट हो जाती हैं। कुछ उत्तर उन बातों के भी मिल जाते हैं जो हमने लेख के प्रारम्भ में उठाये थे। उनके उठाने का अभिप्राय: भी यही रहा था कि वेद से ही उनका उत्तर दिया जाये। मन्त्र के भावार्थ में ऋषिवर लिखते हैं कि जब तक मनुष्य हठ, छल, अभिमान को छोड़कर आपस में सत्य और मित्रता से व्यवहार नहीं करते तब तक सुखों और विद्या की वृद्धि नहीं हो सकती और न ही उनकी उन्नति होती है। एक शब्द और भी प्रयोग किया गया है, वह है 'परोपकार'। अत: सिद्ध हुआ कि छल-कपट आदि दोषों को छोड़े बिना और सत्य और मित्रता को अपनाये बिना विद्या नहीं बढ़ सकती और विद्या के बिना सुख कहां? जिसके पास विद्या होगी, ज्ञान अधिक होगा उसके पास सुख भी अधिक होगा। इतना ही नहीं अपितु पदार्थ में वे सखाय: के अर्थ में लिखते हैं- सबसे मित्र भाव वर्तने वाले विद्वान् लोगो- तुम और हम सब लोग मिलके परस्पर प्रीति के साथ मुक्ति और शिल्प विद्या को सिद्ध करें। केवल भौतिक उन्नति तक सीमित न रहकर मुक्ति, जो कि जीवात्मा का अन्तिम लक्ष्य है, उसे भी प्राप्त करने के लिये निरन्तर प्रयासशील रहें। इसी बात को ध्यान में रखकर हमारे ऋषि-मुनियों ने मानव जीवन के चार लक्ष्य रखे जिन्हें पुरुषार्थ चतुष्टय के नाम से जाना जाता है- धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष।

आज भौतिक उन्नति तो बहुत हो रही है, परन्तु आध्यात्मिक उन्नति पिछड़ गई है। इसका परिणाम सामने है कि प्रत्येक व्यक्ति येन केन प्रकारेण धन कमाने में ही जीवन की उन्नति समझ रहा है और इस धन की दौड़ ने मानव को दानव बना दिया है। चार पुरुषार्थों में नि:संदेह अर्थ को भी स्थान दिया गया है परन्तु उससे पहले धर्म को रखा गया है। इसका अर्थ है कि धन कमाते समय धर्म का ध्यान रखना है, इसकी अवहेलना नहीं होनी चाहिए, धर्म से अजित अर्थ से, अपनी कामनाओं की पूर्ति करना और वे कामनायें ऐसी हों जो मोक्ष की सिद्धि में सहायक हों।

कितना उच्च आदर्श था- कैसी पावन भावना थी! यह सब कुछ वेद के आधार पर ही विकसित किया गया था। विद्या या ज्ञान कभी भी स्वत: ही क्रमिक विकास से सम्भव नहीं हो सकता, जैसा कि पश्चिम के कुछ लोग मानते हैं। परिस्थितियों के कारण हो सकता है कि कुछ खान-पान बदल जाये, थोड़ी बहुत आकृति भी भिन्न हो जाये जैसे कि भारत, चीन, अफ्रीका, इंग्लैण्ड आदि देशों के लोगों की देखने में आती है, परन्तु यह सर्वथा असम्भव है कि ज्ञान का स्तर बिना सिखाये बढ़ता चला जाये।

यदि उक्त वेद मंत्र के अनुसार समाज एवं व्यवहार बन जाये तो तनिक विचार कीजिये कि हमारा समाज और हमारा जीवन कैसा होगा? यह विचार ही इतना रोमांचकारी और आह्लादक है। यही तो वेद की विशेषता है कि उसकी शिक्षाएं देश, काल की सीमाओं में आबद्ध नहीं होती। अगले मंत्र को भी देखते हैं-

पुरूतमं पुरुणामीशानं वार्याणाम्।
इन्द्रं सोमे सचा सुते।।(2)

पदार्थ- हे मित्र विद्वान् लोगो! (वार्याणाम्) अत्यन्त उत्तम (पुरूणाम्) आकाश से लेकर पृथिवी पर्यन्त असंख्य पदार्थों के (ईशानम्) रचने में समर्थ (पुरूतमम्) दुष्ट स्वभाव वाले जीवों को ग्लानि प्राप्त कराने वाले (इन्द्र) और श्रेष्ठ जीवों को सब ऐश्वर्य के देने वाले परमेश्वर के तथा (वार्याणाम्) अत्यन्त उत्तम (पुरूणाम्) आकाश से लेकर पृथिवी पर्यन्त बहुत से पदार्थों की विद्याओं के साधक (पुरूतमम्) दुष्ट जीवों व कर्मों के भोग निमित्त और (इन्द्र) जीव मात्र को सुख-दु:ख देने वाले पदार्थों के हेतु भौतिक वायु के गुणों को (अभिप्रायत) अच्छे प्रकार उपदेश करो और (तु) जो कि (सुते) रस खींचने की क्रिया से पदार्थों के निमित्त कार्य हैं, उनको उक्त विद्याओं से सब के उपकार के लिये यथायोग्य युक्त करो।

आकाश से लेकर पृथ्वी पर्यन्त जितने भी पदार्थ हैं वे सब ईश्वर रचित हैं। उसके अतिरिक्त और किसी में यह सामर्थ्य ही नहीं जो इनकी रचना कर सके। और ईश्वर ने किसके लिये रचे हैं? क्या अपने लिये? जी नहीं, अपने लिये नहीं अपितु सब प्राणियों के लिये रचे हैं। और उन सब में यह योग्यता नहीं कि इन पदार्थों को जानकर उनका यथायोग्य

उपयोग ले सकें। केवल मनुष्य में यह योग्यता है कि वह उन्हें ठीक प्रकार से जाने और अपने जीवन में उनका समुचित उपयोग ले। इस कार्य के लिये उसे किस बात की आवश्यकता होगी? विद्या की, ज्ञान की। इसके बिना न तो वह जान सकता है और न ही उपयोग ले सकता है।

तनिक विचार तो कीजिये कि मनुष्य के सामने कार्य का क्षेत्र कितना विशाल है? सृष्टि की आयु चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष है। यदि इस सारे समय तक भी सभी मनुष्य निरन्तर प्रयास करते रहें तो भी इन पदार्थों को पूर्ण रूप से नहीं जान सकते। परमेश्वर के बनाये हुए पदार्थ न तो व्यर्थ हो सकते हैं और न ही विज्ञान से रहित। क्या आप अपनी कार या स्कूटी में लगे हुए साधारण से दिखने वाले तार या नट बोल्ट को यह कह कर हटा सकते हैं कि यह अनावश्यक लगाया गया है। यह तो मानव रचित यन्त्र की बात है जिसमें भविष्य में बदलाव सम्भव हो सकता है, परन्तु पूर्ण ज्ञानी और महा-विज्ञानी ईश्वर की रचना में कभी भी बदलाव नहीं हो सकता। कारण, कि उससे बढ़कर बुद्धिमान कोई दूसरा हो ही नहीं सकता।

उपर्युक्त मंत्र में पुरूणाम् शब्द का दो बार व्याख्यान करते हुए पहले कहा गया कि सब पदार्थों का रचने वाला ईश्वर है और दूसरी बार कहा गया कि इन पदार्थों में व्यापक विद्याओं का साधक अर्थात् उसे जानने वाला मनुष्य है। उस दयालु जगदीश्वर ने ये विद्यायें मनुष्य के लिए ही तो रची हैं। मनुष्य इनके बारे में जितना अधिक जानेगा उतना अधिक सुखी होता चला जायेगा।

आगे कहा गया है कि वह कर्मों का यथायोग्य फल भी देने वाला है। पदार्थ तो प्राप्त कर लिये, उनका ज्ञान भी प्राप्त कर लिया परन्तु उस ज्ञान का प्रयोग परोपकार के लिये नहीं, अपितु स्वार्थ सिद्धि, दूसरों का शोषण, अत्याचार और विनाश के लिये किया तो इन दुष्कर्मों का फल भी अवश्यमेव भोगना पड़ेगा। इसलिए ज्ञान का उपयोग सदा दूसरों के कल्याण के लिये करना चाहिये न कि स्वार्थ हेतु उन्हें हानि पहुंचाने के लिये।

यह सदैव स्मरण रखना चाहिये कि वेदों में कहीं भी ऐसी उपलब्धि का वर्णन नहीं है जो एकांगी हो और स्वार्थ के लिये हो। जहाँ भी आप वेदों के मंत्रों में देखेंगे, वहाँ पर ऐश्वर्य, बल एवं बुद्धि की कामना के लिये बहुवचन का प्रयोग हुआ है। उदाहरण के लिये- **वयं स्याम पतयो रयीणाम्।।** हम धन ऐश्वर्यों के स्वामी बनें। **धियो यो नः प्रचोदयात्।।** हमारी बुद्धियों को श्रेष्ठ मार्ग पर प्रेरित करें- आदि।

इस सूक्त के सभी मंत्र ऐसे हैं जो विस्तृत रूप से व्याख्यान किये जा सकते हैं। केवल अन्तिम मंत्र को देकर हम इस लेख को समाप्त करेंगे। यदि प्रत्येक मंत्र पर लिखेंगे तो लेख का आकार बड़ा हो जायेगा। अन्तिम मंत्र है-

मा न मती अभिद्रुहन तनूनामिन्द्र गिर्वणः।
ईशानो यवया वधम्।। (10)

भावार्थ- कोई मनुष्य अन्याय से किसी प्राणी को मारने की इच्छा न करे, किन्तु सब परस्पर मित्र भाव से वर्तें, क्योंकि जैसे परमेश्वर बिना अपराध के किसी का तिरस्कार नहीं करता, वैसे ही सब मनुष्यों को भी करना चाहिये।

कितनी मार्मिक बात महर्षि प्रवर कह रहे हैं! परन्तु मनुष्य इस उपदेश को भूलकर अनेक प्रकार की हिंसा, द्वेष और अत्याचार करके अपना और दूसरों का जीवन दुःखमय बना लेता है। आज किसी भी नगर की गलियों या सड़कों से निकल जाईये सभी में पशु-पक्षियों के मांस के लोथड़े लटके हुए दिखाई दे जायेंगे। यहाँ तक कि पवित्र स्थान समझे जाने वाले देवी, देवताओं के मन्दिर भी इस क्रूरता से अछूते नहीं हैं। धर्म के नाम पर विभिन्न त्योहारों को भी निर्दोष प्राणियों के रक्त में रंग दिया गया है। क्या यह ईश्वर की ओर जाने का मार्ग है? जिस दृश्य को देखकर ही मन में घृणा का भाव उत्पन्न होता हो, उस कार्य से ईश्वर भक्ति की आशा कैसे की जा सकती है! क्या इसे विद्या की, उच्च ज्ञान की स्थिति माना जा सकता है? कदापि नहीं।

मनुष्य में ज्ञान के साथ संवेदना होना भी आवश्यक है। यदि एक दुःखी मनुष्य को देखकर उसके प्रति संवेदना मन में नहीं जगती, उसके कष्ट निवारण के लिये हाथ आगे नहीं बढ़ते हैं, किसी प्राणी को कष्ट और तड़प से छटपटाते हुए देखकर मन में दया के भाव उत्पन्न नहीं होते तो निश्चय करके जानिये कि नर देह होने के उपरान्त भी अभी मानवता से बहुत दूर हैं। वेद की शिक्षाएं तो मानव को चरित्र की उस ऊंचाई पर ले जाने के लिये हैं जहाँ उसे सारा विश्व एक घोंसले के समान दिखाई देता है। सब प्राणियों में अपना आपा दिखाई देने लगता है और वह पुकार उठता है

वेनस्तत्पश्यन्निहितं गुहा सद्यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्।
(यजु. 32/8)

●श्री ओमप्रकाश जी त्यागी, पूर्व सांसद
पूर्व मन्त्री सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, संस्थापक अध्यक्ष सार्वदेशिक आर्य वीर दल

छूआछूत अवैदिक है

छूआछूत विदेशी देन है

भारत को उन्नति के शिखर पर देखने के अभिलाषी अधिकांश देश-भक्तों की यह दृढ़ धारणा है कि केवल रोटी-रोजी की समस्या सुलझा देने अर्थात् देश की आर्थिक उन्नति हो जाने पर इसकी समस्त समस्याओं का स्वत: समाधान हो जायेगा। यही इसकी उन्नति की सर्वोच्च सीमा होगी। परन्तु यदि वे भारतीय इतिहास पर एक बार दृष्टिपात कर लें तो उन्हें अपनी भ्रान्त धारणा का ज्ञान हो जाय। यहाँ मुट्ठी भर विदेशी शताब्दियों तक इस देश के करोड़ों व्यक्तियों को भेड़-बकरियों की भांति हांकते रहे। जब विदेशी यहां आये थे तब यह देश संसार में 'सोने की चिड़िया' के नाम से प्रसिद्ध था और यहां रोटी-रोजी नाम की कोई समस्या नहीं थी। इससे सिद्ध होता है कि देश की उन्नति का मूल आधार केवल रोटी-रोजी, कपड़ा ही नहीं अपितु कुछ और भी कारण हैं जिन पर देश की स्वतन्त्रता, अभिमान, सम्मान, प्रगति आधारित होती है।

किसी भी देश की उन्नति व प्रगति का मूलाधार वास्तव में उस देश के निवासियों की एकता, चरित्र, एवं उच्च आदर्श होता है। रोटी, कपड़ा आदि तो उक्त अवस्था के अनिवार्य परिणामों में से एक हैं। अकेले रोटी, कपड़ा, मकान के रहते देश विनाश के मुख में जा सकता है, परन्तु रोटी, कपड़े के न रहते हुये भी एकता, चरित्र व उच्चादर्श के सहारे वह चट्टान की भांति सभी संपत्तियों व विपत्तियों में भी अडिग खड़ा रह सकता है।

इसलिए भारतीय राष्ट्र की उन्नति व प्रगति के लिए रोटी-रोजी से भी पूर्व उसकी एकता, चरित्र व उच्चादर्श की स्थापना व रक्षा की आवश्यकता है। जो सरकार, पार्टी-नेता इसकी स्थापना करने में असमर्थ हैं, उनके द्वारा यह देश उन्नति व प्रगति के शिखर पर कभी पहुंच सकता है, यह कल्पना मात्र है।

भारत की एकता के मार्ग में गरीबी व बेकारी से भी अधिक भयंकर शत्रु हैं-यहाँ की संकुचित साम्प्रदायिकता, जातीयता, छूत-छात, प्रान्तीयता, क्षेत्रीय भावना, भाषावाद इत्यादि। देश की आर्थिक क्रान्ति की दिशा में जिस गति से प्रगति हुई है उससे चौगुनी गति से राष्ट्रीय एकता विरोधी उक्त शक्तियां प्रबल हुई हैं। अवस्था यहाँ तक दयनीय बन गई है कि आज भारत को भारत के रूप में बनाये रखना सन्देहास्पद हो गया है।

राष्ट्रीय एकता के उपरिलिखित शत्रुओं में सब से भयावह शत्रु है- छूतछात। जातिवाद जैसे सामाजिक दोष के रहते भारतीय एकता कदापि संभव नहीं है। यह बात सत्य है कि भारतीय संविधान अनुसार छूत-छात कानूनन बंद हैं, परन्तु यह भी सत्य है कि कुछ मुट्ठी भर नगरों को छोड़कर देश के गांवों में वह ज्यों की त्यों बनी है। नगरों में भी होटलों रेस्तोरेन्टों व सिनेमाघरों से ही इसका निष्कासन हुआ है।

अछूतपन की बीमारी मानसिक है। इसे डंडे के बल से भगाना या समाप्त करना सर्वथा असंभव है। इस बीमारी को समूल समाप्त करने के निमित्त मानसिक उपचार की आवश्यकता है। कानून मानसिक उपचार में किसी अंश तक सहायक हो सकता है परन्तु केवल इसी का सहारा लेने से इलाज के स्थान पर उल्टे विपरीत प्रतिक्रिया होने की संभावना है।

इस भेदभाव को समूल नष्ट करने के निमित्त 19वीं शताब्दी के महान् क्रांतिकारी महर्षि दयानन्द ने बड़ा ही आदर्श मार्ग उपस्थित किया था। यदि उनके बतलाये हुए उपाय को देश की जनता व सरकार स्वीकार कर लेती तो आज भारत में अछूतपन नाममात्र के लिए भी दिखाई नहीं देता। महर्षि ने इस सामाजिक दोष के कारणों की खोज कर बतलाया कि वर्तमान जन्म पर आधारित जाति-पांति और दासता-काल में अछूत नाम के विशेष वर्गों का उदय होना ही इसका प्रधान कारण है। महर्षि ने वेद-शास्त्रों के द्वारा

सिद्ध किया कि जन्मगत जाति-पांति व छूत-छात सर्वथा अवैदिक धारणा है और अछूतपन का वैदिक धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं है।

महर्षि दयानन्द ने सप्रमाण सिद्ध किया कि वैदिक धर्म व्यक्ति के गुण, कर्म व स्वभाव के आधार पर स्थापित वर्ण-व्यवस्था को मानता है जिसके अनुसार कोई भी व्यक्ति किसी भी वर्ण में जन्म लेकर अपने गुण, कर्म तथा स्वभाव के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र बन सकता है। अछूतपन को वर्ण-व्यवस्था में कहीं कोई स्थान नहीं है।

अछूतपन विदेशियों की देन है।

महर्षि ने अपने पक्ष की सिद्धि में अनेक शास्त्रार्थ किये और अन्त में देश की समृद्ध जनता ने उनकी युक्तियों को स्वीकार कर अछूतपन को समाप्त कर 'अछूत' कहे जाने वाले बंधुओं के साथ सहभोज कर उन्हें गले लगाना प्रारम्भ कर दिया। बहुत से 'अछूत' कहे जाने वाले व्यक्तियों को आर्यसमाज ने सुयोग्य विद्वान, उपदेशक और ब्राह्मण बना दिया। परन्तु दुर्भाग्यवश गांधी जी के समय 'हरिजन' नामक एक पृथक् वर्ग बना दिया गया और स्वतन्त्रता के पश्चात् इस वर्ग को राजनीतिक संरक्षणों आदि के नाम पर स्थिर करके अस्पृश्यता को स्थायित्व प्रदान करने की भूल हुई। आर्यसमाज ने इस दिशा में जो प्रशंसनीय काम किया था उस पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ा।

बहुत से अज्ञानी लोगों की आज भी यही भ्रान्ति है कि जन्मगत जाति-पांति तथा अछूतपन हिन्दू धर्म के अंग हैं, और इनके समाप्त होते ही हिन्दू धर्म समाप्त हो जायेगा। उन्हें ज्ञान नहीं कि हिन्दू धर्म अर्थात् वैदिक धर्म मानवीय धर्म है और प्राणिमात्र का कल्याण करना इसका एकमात्र लक्ष्य है, और रंग तथा जाति के आधार पर ऊंच-नीच तथा छूत-छात की भावना अमानवीय विचार है और मानवता पर यह कलंक मात्र है। भला जो धर्म भगवान् की सर्वव्यापकता में विश्वास रखता है तथा उसे पिता और पृथ्वी को माता मानते हुए मानवमात्र को भाई मानता है वह किसी वर्ग को 'अछूत' कैसे घोषित कर सकता है। परन्तु दोष उनका नहीं है, उनकी अज्ञानता का है। हिन्दू धर्म के वर्तमान स्वरूप को देखकर उन्हीं का क्या, प्रत्येक का यही विचार बने बिना न रहेगा।

आदि में एक ही वर्ण था

सृष्टि के आदि में वैदिक धर्म की मान्यता के अनुसार एक ही वर्ण था। वर्ण व्यवस्था का उदय बहुत दिन पश्चात् समाज को सुव्यवस्थित करने के निमित्त वेदानुकूल ही हुआ। तत्संबंधी कुछ प्रमाण इस प्रकार हैं-

बृहदारण्यक प्रथम अध्याय, चतुर्थ ब्राह्मण की 11-12-13 कंडिकाओं में वर्णन है कि सृष्टि के आरंभ में एक ही ब्राह्मण वर्ण था। उससे लौकिक व्यवहारों की सिद्धि न हो सकी इसलिए उसने अपने में ही से क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्ण बनाये। अर्थात् सृष्टि के आदि में ब्राह्मणों ने लौकिक व्यवहार की सिद्धि के लिए कामों को परस्पर बांट लिया।

महाभारत, शान्तिपर्व, मोक्ष धर्म, अध्याय 42 श्लोक 10 तथा भागवत स्कन्ध 9, अध्याय 14, श्लोक 4 में भी लिखा है कि सृष्टि के आदि में एक ही वर्ण था। पश्चात् कार्य भेद से ब्राह्मण आदि चारों वर्ण हुए। भविष्य पुराण ब्राह्मण पर्व अध्याय 40 में भी वर्णों को कृत्रिम और कार्य एवं योग्यता के भेद से ही उनके भेद माने हैं।

यदि जन्म के आधार पर ही वर्तमान ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रादि की उत्पत्ति स्वीकार कर ली जावे तब उपरिलिखित प्रमाणों के आधार पर भारत में समस्त आर्य (हिंदू) केवल ब्राह्मण वर्ण ही हो सकते हैं। अन्य नहीं। और ऐसी स्थिति में जब सभी जन्म से ब्राह्मण हैं तो ऊंच-नीच वा अछूत का भेद मानना व्यर्थ होगा। इससे सिद्ध होता है कि कार्य की योग्यता और स्वभाव की दृष्टि से ही इस व्यवस्था को वैदिक धर्म ने स्वीकार किया है।

ऐतिहासिक प्रमाण :

वर्ण-व्यवस्था जन्म पर आधारित न होकर मनुष्यों के गुण, कर्म तथा स्वभाव पर ही आधारित है और यही प्रथा भारत में विदेशियों के आगमन से पूर्व प्रचलित थी। इसके ऐसे अनेकों ऐतिहासिक प्रमाण उपस्थित किये जा सकते हैं जिनसे यह सिद्धांत स्पष्ट सिद्ध होता है। उनमें से कुछ इस प्रकार हैं-

भविष्य पुराण, ब्रह्म पर्व अध्याय 42 श्लोक 22, 23, 24 में लिखा है कि कैवर्त स्त्री (शूद्र) से महर्षि व्यास, माता श्वपाकी से मुनि पाराशर, शुकी से शुकदेव, उल्लूकी से महर्षि कणाद, मृगी से श्रृंगी ऋषि, गणिका से वशिष्ठ ऋषि तथा लाविका से मुनियों में श्रेष्ठ मुनि मन्दपाल उत्पन्न हुए। उक्त सभी माताएं शूद्र वर्ण की थीं। वैदिक धर्म से लेशमात्र भी परिचय रखने वाला प्रत्येक व्यक्ति भली भांति जानता है कि ऊपर वर्णित ऋषियों, महर्षियों व मुनियों का वैदिक

वर्ण-व्यवस्था में क्या स्थान है। यदि जन्म पर ही वर्ण-व्यवस्था आधारित होती तो इन सब का वर्ण ब्राह्मण न होकर शूद्र होना चाहिए था।

भारत के इतिहास से परिचित कौन व्यक्ति ऐसा है जो इस महान ऐतिहासिक घटना से परिचित न हो कि भारत सम्राट् शान्तनु ने एक कैवर्त (मल्लाह) की रूपवती कन्या सत्यवती से विवाह किया था और सत्यवती के बच्चों को भारतीय राज्य के स्वामी बनाने के लिये ही भीष्म पितामह ने अपने अधिकार का परित्याग करते हुए जीवन भर ब्रह्मचारी रहने की भीष्म प्रतिज्ञा की थी। इसी के समर्थन में अन्य भी प्रमाण हैं-

पुत्रो गृत्स्मदस्यापि शुनको यस्य शौनकः।
ब्राह्मणा क्षत्रियाश्चैव वैश्याः शूद्रास्तथैव च,
एतस्यैवांश-संभूता विचित्रकर्मभिद्विजाः॥ (वायुपुराण)

अर्थात्—गृत्समद का पुत्र शुनक से शौनक, इस शौनक के चार लड़के कर्म भेद से ब्राह्मण, वैश्य, क्षत्रिय तथा शूद्रादि वर्ण के हुए।

एते ह्यांगरिसः पुत्रा जाता वंशेऽथ भार्गवे ।
ब्राह्मणाः क्षत्रियवैश्याः शूद्राश्च भरतर्षभ॥

अर्थात्—भार्गव वंश में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र चारों वर्ण हुए।

वैदिक धर्म के विरोधी लोग बहुधा अछूतपन को सिद्ध करने के लिए मनु महाराज द्वारा लिखित मनुस्मृति को उद्धृत किया करते हैं। परंतु मनु महाराज का स्वतः इस सम्बन्ध में विचार इस प्रकार है-

शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम्।
क्षत्रियाज्जातमेवन्तु विद्याद्वैश्यास्तथैव च ॥10.65।।

अर्थात्—कर्मों की अच्छाई-बुराई से शूद्र ब्राह्मण और ब्राह्मण शूद्र हो जाता है। इससे स्पष्ट प्रकट होता है कि मनु महाराज की दृष्टि में वर्ण जन्म पर आधारित न होकर व्यक्ति के गुण, कर्म तथा स्वभाव पर आधारित हैं। इतना ही नहीं, मस्त्य पुराण अध्याय 4 में भी लिखा है कि मनु के पुत्र वामदेव के पुत्र अपने कर्मों से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र हुए।

कूर्म पुराण अ. 10 श्लोक 2 में वर्णन है कि श्री रेभ के पुत्रों में वेदों के विद्वान् श्रेष्ठ पुत्र शूद्र हुए अर्थात् वेदों के विद्वान् होते हुये भी अपनी जीविका के लिये उन्होंने शूद्र वर्ण स्वीकार किया।

चार वर्णों का उदय :

वर्ण एवं आश्रम-व्यवस्था का मूलाधार वेद है। वेद में इन चारों वर्णों के स्वरूप व कर्म की जो कल्पना एक राष्ट्र में की है, उसका वर्णन इस प्रकार है-

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत॥
(ऋ. 10.60.12 य. 31-11 अ. 19.6.6)

अर्थात्-राष्ट्र रूपी पुरुष का ब्राह्मण मुख, क्षत्रिय भुजा, वैश्य उदर तथा टांगें शूद्र होती हैं। इसका तात्पर्य यह है कि किसी भी राष्ट्र को सुव्यवस्थित रखने एवं उसे प्रगतिशील तथा सुखी बनाने के निमित्त उसके इन चार अंगों को संगठित करना होगा।

उदाहरणार्थ-वर्तमान समय में संसार का कोई भी प्रगतिशील राष्ट्र ऐसा नहीं है जिसने वेदोक्त उपरिलिखित समाज-व्यवस्था की उपेक्षा कर अपने को प्रगतिशील, समृद्धिशाली एवं सुरक्षित बनाया हो। भले ही उन्होंने राष्ट्र के इन चार अंगों का नाम ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र न रखकर उन्हें अध्यापक, सैनिक, व्यापारी, उद्योगपति एवं श्रमिक के नाम से पुकारा हो। इससे सिद्ध होता है कि वेदों पर आधारित वर्णव्यवस्था सर्वमान्य है।

वेदों में वर्णित समाज-व्यवस्था (वर्ण व्यवस्था) वैज्ञानिक एवं वर्तमान राजनीतिक दृष्टि से भी सत्य एवं श्रेष्ठ है। वेद भगवान् ने मानव-समाज को सुखी बनाने के निमित्त इसकी सुख-शान्ति के तीन शत्रु अर्थात् अज्ञान, अन्याय एवं अभाव को ही माना है। इन्हीं से लड़ते हुए समाज को सुखी एवं प्रगतिशील बनाने के निमित्त ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य को बनाया और समाज का जो वर्ग इन तीन शत्रुओं से लड़ने में असमर्थ रहता है उसे उक्त तीनों वर्णों के सहायक के रूप में स्वीकार किया।

गीता में भी योगिराज कृष्ण ने वेदों की उपर्युक्त मान्यता को स्वीकार करते हुए चारों वर्णों की उत्पत्ति इस प्रकार मानी है-

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुण कर्म विभागशः।

अर्थात्-भगवान ने मनुष्यों के गुण, कर्म, स्वभाव के आधार पर ही चार वर्णों में समाज को व्यवस्थित करने का उपदेश दिया है।

चारों वर्णों की समानता :

लौकिक व्यवहार की सिद्धि के लिए सृष्टि के आदि में ब्राह्मण वर्ण चार वर्णों में विभाजित हुआ परन्तु

समाज में उनके अन्दर एक-दूसरे के प्रति ऊंच-नीच तथा छूत-छात की भावना लेशमात्र भी नहीं थी। इनके खान-पान आदि में कोई भेद-भाव नहीं था। इस तथ्य को ऋग्वेद 5.60.5 में इस प्रकार बताया गया है-

अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते संभ्रातरौ वावृधुः सौभाय।

अर्थात्-मनुष्यों में जन्म सिद्ध कोई भेद नहीं है। उनमें कोई बड़ा, कोई छोटा नहीं है। वे सब आपस में बराबर के भाई हैं। सबको मिलकर अभ्युदयपूर्वक मोक्ष की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करना चाहिए।

महाभारत वन पर्व अध्याय 149 श्लोक 18, 19, 20 में स्पष्ट लिखा है कि कृतयुग (सत्ययुग) में चारों वर्गों के ज्ञान और आचार एक समान थे। उनके संस्कार वैदिक विधि के अनुसार होते थे।

कुछ अज्ञानी लोगों का यह कहना है कि वैदिक धर्म में स्त्रियों एवं शूद्रों को वेद पढ़ने एवं यज्ञ करने का अधिकार नहीं है। उनकी भ्रान्ति के निवारणार्थ वेद (यजुर्वेद 26.2) का यह प्रमाण उपस्थित है-

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः।
ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चर्याय च स्वाय चारणाय॥

इस मन्त्र में शूद्र को नहीं, अपितु मनुष्य मात्र को भी वेद पढ़ने का वैसा ही अधिकार दिया गया है जैसा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य को।

पंचजना मम होत्रं जुषन्तां गोजाता उत ये यज्ञियासः।
पृथिवी नः पार्थिवात्पात्वं हसोन्तरिक्षं दिव्यात्पात्वस्मान्॥

ऋ.10.53.5

इस मन्त्र में यजमान कहता है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद, पाँचों प्रकार के मनुष्य मेरे यज्ञ को करें।

यह बात भी सत्य है कि हिन्दू धर्म के कुछ तथाकथित ग्रन्थों में इसके विपरीत भी भावना व्यक्त की गई है, परन्तु वेद विरुद्ध होने के कारण उन्हें किसी भी अवस्था में वैदिक धर्म (हिन्दू धर्म) का ग्रन्थ स्वीकार नहीं किया जा सकता। वैदिक धर्म के सम्बन्ध में वेद की मान्यता ही सर्वोपरि एवं सर्वमान्य है।

खान-पान

वर्तमान समय में वर्ण-व्यवस्था के जन्ममूलक होने के साथ इसमें सबसे बड़ा दोष यह आ गया है कि कुछ लोगों को अछूत मानकर उनके साथ खान-पान आदि का सम्बन्ध विच्छेद कर लिया। खान-पान आदि में छूत-छात ही वह दोष है जो राष्ट्र की एकता एवं प्रगति के लिए बहुत बड़ा खतरा है। प्राचीन काल में जब वर्ण व्यवस्था अपने सही स्वरूप में थी तो चारों वर्णों में खान-पान में कोई भेद-भाव नहीं था और मुख्यतः शूद्र वर्ण के लोगों के द्वारा ही भोजन आदि पकाने, परोसने और बड़े-बड़े यज्ञों में भोजनशाला का पूर्ण नियन्त्रण करने का कार्य होता था। इसमें कुछ प्रमाण इस प्रकार हैं-

ब्राह्मणाः भुञ्जते नित्यं नाथवन्तश्च भुञ्जते।
तापसा भुंजते चापि, श्रमिकाश्चैव भुंजते॥

बाल्मीकि रा. सु. श्लोक 12॥

अर्थात्- महाराज दशरथ के यज्ञ में शूद्रों का पकाया हुआ भोजन ब्राह्मण, तपस्वी और शूद्र मिलकर करने लगे।

अन्तरापणा वीथ्यश्च, सर्वे नट-नर्तकाः।
सूपा नार्य्यश्च वहवो, नित्यं यौवनशालिनः॥

अर्थात्- श्री रामचन्द्र जी अपने यज्ञ के लिए आज्ञा देते हैं कि सब बाजार के व्यापारी, नट, नर्तक, सूद और रसोई बनाने वाली स्त्रियाँ भरत जी के साथ जाएं।

तौ दृष्ट्वा तदा सिद्धा समुत्थाय कृताञ्जलिः।
पादौ जग्राह रामस्य लक्ष्मणस्य च धीमतः॥
पाद्यमाचमनीयंश्च सर्वे प्रादाद्यथाविधिः॥

(बा. रा. सु. कांड 7)

अर्थात्- श्री रामचन्द्र जी शबरी (भीलनी) के आश्रम में गये तो उन दोनों भाइयों को देखकर वह हाथ जोड़कर उठी और पांव छुए तथा यथाविधि पाद्य तथा आचमन दिया।

इसी प्रकार बा. रा. अयोध्याकाण्ड श्लोक 33-34 में लिखा है कि जब महाराज रामचन्द्र जी अपने परम मित्र निषादराज गुह के यहां पहुंचे तो बड़े प्रेम से उसका आलिंगन किया और उसका आतिथ्य स्वीकार किया। इन प्रमाणों से विदित होता है कि रामायण काल में भी भील, गोंड, निषाद और शूद्र अछूत नहीं थे।

आरालिकाः सूपकाराः रागखण्डविकास्तथा।
उपातिष्ठन्त राजानां धृतराष्ट्रे यथा पुरा॥

महाभारत आ. पर्व 1.190

अर्थात्- राजा धृतराष्ट्र के यहां पूर्व के सदृश आरालिक और सूपकार आदि शूद्र भोजन बनाने वाले नियत हुए।

स्वयं वेद भगवान् ने चारों वर्णों को खान-पान आदि में समान व्यवहार करने का इस प्रकार उपदेश दिया है- (ऋ. 9.98.12)

तं सखायः पुरोरुचं यूयं वयं च सूरयः।
अश्याम वाजगन्ध्यं सनेम वाजस्पत्यम्॥

अर्थात्- हे मित्रो! तुम और हम मिलकर बलवर्धक तथा सुगन्ध युक्त अन्न को खावें। अथवा सहभोज करें।

समानी प्रपा सह वोऽन्न भागः समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि।
सम्पञ्चोऽग्निसपर्यतारा नाभिमिवाभितः॥

(अथर्व. 6. 30. 6)

अर्थात् हे मनुष्यो! तुम्हारे पानी पीने के स्थान और तुम्हारा अन्न-सेवन अथवा खान-पान एक साथ हों। मैं तुम सबको एक ही प्रकार के नियमों के बंधन में जोड़ता हूँ। तुम सब मिलकर इस प्रकार अग्निहोत्र आदि सार्वजनिक तथा सर्वोपकारक यज्ञों को करो, जिस प्रकार नाभि में अरे दृढ़ता से जुड़े रहते हैं।

बिन्दु-बिन्दु विचार

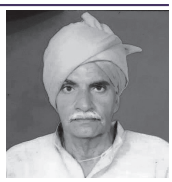

●भलेराम आर्य, सांघी वाले
(9416972879)

❖व्यक्ति के स्वभाव पर उसका भविष्य निर्भर करता है।
❖भाषा विचार का वस्त्र है।
❖आत्मविश्वास में पर्वतों को भी हिलाने की क्षमता है।
❖खुशी का सबसे बड़ा रहस्य त्याग है।
❖दया धर्म की जननी है।
❖बड़े सफर की शुरुआत एक छोटे कदम से ही होती है।
❖बहाने बनाना अपनी कमजोरी पर पर्दा डालने जैसा ही है।
❖उत्तरदायित्व की भावना का अभाव प्रगति को रोकता है।
❖विनम्रता और मधुर वाणी दुर्लभ आभूषण हैं।
❖एकांत स्वयं को जानने का सर्वोत्तम माध्यम है।
❖पतझड़ हुए बिना पेड़ों में फल नहीं लगता।
❖पश्चाताप भूल सुधार का पहला चरण है।
❖असफल होने का डर सफलता में सबसे बड़ा बाधक है।
❖सत्य का मार्ग ही जीवन में भटकाव से बचाता है।
❖उत्सव जीवन में ऊर्जा एवं उमंग का संचार करते हैं।
❖सुंदर शरीर की तुलना में सुंदर आचरण ज्यादा अच्छा है।
❖जो समय का मोल समझता है, समय उसे अनमोल बना देता है।
❖साहस के साथ सतत् परिश्रम सफलता का मूल मंत्र है।
❖घर की खुशहाली में स्वभाव का बड़ा महत्त्व होता है।
❖प्रार्थना हृदय की पुकार है

वर्णों में शूद्रों का स्थान :

बहुधा लोगों को यह भ्रान्त धारणा है कि मैला उठाने वाले, चर्म का काम करने वाले को ही वैदिक धर्म में शूद्र के नाम से पुकारा गया है, परन्तु यह मान्यता सर्वथा निराधार और असत्य है। यजुर्वेद अध्याय 30, मन्त्र 5 में पहले ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र और उनके कामों का वर्णन किया गया है।

मन्त्र में पहले तीनों विभाग (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) अथवा वर्णों के कार्यों (क्रमशः पढ़ना-पढ़ाना, उपदेश करना, प्रबन्ध करना तथा रक्षा करना और व्यापार करना) को क्रमशः बतलाकर तप अथवा श्रम से सिद्ध होने वाले सारे काम शूद्र के बतलाये हैं। वैदिक धर्म के अनुसार मानव समाज में कर्मी को सबसे अधिक धार्मिक तथा सम्मानित माना गया है। स्वयं साक्षात् भगवान् को भी विश्वकर्मा अर्थात् अपने तप के द्वारा विश्व की रचना करने वाला कहा गया है। यही कारण है कि सर्वत्र सभी शिल्पकार लोग ईश्वर की विश्वकर्मा के रूप में ही पूजा करते हैं, इसलिए परिश्रम से कार्य करने वाले वर्ग को अछूत कहना या समझना अथवा इस प्रथा को वैदिक धर्म का अंग मानना अपनी अज्ञानता को ही प्रकट करना है। वैदिक धर्म के किसी भी वेदानुकूल धर्म शास्त्र में शूद्र को अछूत एवं घृणित नहीं माना गया है। दस्यु-कर्मा लोगों के प्रति अवश्य घृणा प्रकट की गयी है। परन्तु उनको भी अछूत नहीं माना गया है। वेद के अनुसार दस्यु उन व्यक्तियों को माना गया है जो अपने परिश्रम की कमाई न खाकर चोरी, डाका, लूट, धोखा आदि से अपना निर्वाह करते हैं और निषिद्ध कर्म एवं व्यवहार करते हैं।

ऋग्वेद 10. 22. 8 के अनुसार दस्यु को अकर्मा, अमन्तः तथा अमानुष बताया गया है। मनुस्मृति के निम्न श्लोक से भी उपर्युक्त कथन की पुष्टि होती है।

मुखबाहूरुपज्जान्ता या लोके जातयो बहिः।
म्लेच्छवाचश्चार्य वाचः सर्वे ते दस्यवः स्मृतः॥

(मनु. 10. 88)

अर्थात्— ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र से जो लोग बाहर हैं वे चाहे म्लेच्छ भाषा बोलते हैं चाहे आर्य भाषा, वे सब दस्यु हैं।

भारत में अछूतपन कब, क्यों और कैसे ?

वेदादि धर्मग्रन्थों में गोहत्या तथा गोमांस-भक्षण को जघन्य पाप माना गया है। गोहत्यारे के हाथ का छुआ

हुआ पानी पीना तक वैदिक धर्मियों ने कभी अच्छा नहीं समझा। भारत में जबसे गोमांस भक्षण करने वाले विदेशियों का आगमन हुआ तब से गोभक्षक लोगों के प्रति खान-पान में छूतछात की भावना का उदय हुआ। बाहर से आने वाले मुस्लिम, ईसाई दोनों ही बन्धुओं को इस दृष्टि से वैदिक धर्मियों ने अछूतों की कोटि में रखा।

इतना ही नहीं, अपने सवर्णों में भी (अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि वर्णों के) अपने ग्रामीणों के हाथ से भी जाने-अनजाने में यदि गोवंश की हत्या हो जाये तो तब तक उस व्यक्ति को अछूत एवं घृणित कोटि में माना जाता रहा है जब तक वह प्रायश्चित्त नहीं कर लेता।

उपयुक्त तथ्यों से उन लोगों की आंखें खुल जानी चाहिएँ जो केवल यही प्रचार करते हैं कि वैदिक धर्म में शूद्रों को ही अछूत माना गया है। **शूद्र गोभक्षक कभी नहीं रहे, इसलिए शूद्र को अछूत मानने का प्रश्न ही पैदा नहीं होता।** हाँ, यह बात सत्य है कि जिन लोगों ने गोभक्षकों के साथ खाने-पीने में एकता स्थापित की उनको भी आर्य जाति ने अपने में से बहिष्कृत कर दिया। उदाहरणार्थ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यादि वर्ण के बन्धु आज करोड़ों की संख्या में मुसलमान इसलिए बने बैठे हैं, क्योंकि उनके पूर्वजों ने कभी मुस्लिम बन्धुओं के साथ जाने-अनजाने में खान पान किया।

गोभक्षकों से अपने लोगों की रक्षार्थ ही गुण-कर्म व स्वभाव पर आधारित वर्ण-व्यवस्था ने जन्मना जाति-पांति का रूप धारण कर लिया। प्रत्येक वर्ण के लोगों ने अपनी पंचायतों का निर्माण कर उनके द्वारा अपने वर्ण पर नियंत्रण प्रारम्भ कर दिया। पंचायतों के नियन्त्रण में सवर्णों की अपेक्षा शूद्र वर्ग अधिक सफल रहा और यही कारण है शूद्र लोग गो-भक्षकों के चंगुल में अधिक न फंस सके।

शूद्र वर्ग में भी जो जो लोग मरे पशुओं का चमड़ा आदि उतारने का काम करते थे, उनके सम्बन्ध में जब से समाज में यह भ्रान्त धारणा उत्पन्न हुई कि ये लोग भी मृत गोवंश का मांस खाते हैं, तब से उनके प्रति भी समाज में अछूतपन की भावना जाग्रत हुई। परन्तु यह वास्तविकता पर आधारित न होकर भ्रान्त धारणा पर ही आधारित रही है।

अछूतपन का दूसरा मूल कारण दूसरों का मल उठाने वाले वर्ग का उदय होना है। भारत में इस कुप्रथा का भी जन्म विदेशियों के आगमन के पश्चात् ही हुआ। भारत की सामाजिक व्यवस्था एवं इतिहास इस बात का साक्षी है कि यहाँ घरों में शौच जाने की प्रथा कभी नहीं रही। सभी लोग नित्य कर्म से निवृत्त होने के लिये गांवों एवं नगरों से बाहर जंगलों में जाते थे। इसका सबसे बड़ा प्रमाण आर्य जाति का साहित्य है जिसमें शौचालय तथा शौचालय में शौच कर्म के लिये जाने का कहीं उल्लेख नहीं है। मल-निवृत्ति के लिए जो भी शब्द समाज में प्रचलित हैं उनमें से कुछ इस प्रकार हैं- जंगल जाना, बाहर जाना, घूमकर आना इत्यादि। इन शब्दों से स्पष्ट प्रकट होता है कि लोग गांव या नगर से बाहर नित्यकर्म के लिए जाते थे।

विदेशियों के आगमन से पूर्व भारत के किसी भी प्राचीन नगर या भवन में कहीं किसी स्थान पर शौचालयों का निर्माण नहीं पाया जाता है। घरों में बीमारी एवं विशेष व्यवस्था में शौच जाने के निमित्त कुछ विशेष प्रकार के शौचालय अवश्य पाये जाते हैं जो कूएं अथवा खत्ती के रूप में बने होते हैं, जिनका मुंह छोटा होता है और उनसे मल उठाने या साफ करने का एकमात्र साधन यही रहा है कि उनमें नमक डाला जाता रहा है। यदि यह कहा जाये कि वर्तमान सेफ्टी टैंकों का ही दूसरा रूप ये शौचालय थे तो अतिशयोक्ति न होगी।

भारत में शौचालय एवं शौचालय से मल साफ करने वाले वर्ग का उदय भारत में मुस्लिम के आगमन के पश्चात् हुआ। मुगल लोगों की महिलाओं में पर्दा प्रथा थी और वे अपने को शासकीय वर्ग का समझते थे और अपने को विशेष उच्चवर्ग में रखना चाहते थे। इसलिए उन्होंने अपने द्वारा निर्मित घरों में शौचालयों का निर्माण किया और मल उठाने वाले मेहतर वर्ग का निर्माण किया। महत्तर वर्ग का मेहतर नाम स्वयं इस बात का द्योतक है कि यह शब्द मुसलमानों की देन है। जिस दिन से दूसरों का मल सिर पर उठाने वाले वर्ग का उदय हुआ, उसी दिन से उस वर्ग के प्रति स्वाभाविक रूप से वैदिक धर्मावलम्बियों ने अछूतपन की भावना को धारण किया।

उपरिलिखित तथ्यों से यह स्पष्ट है कि अछूतपन वैदिक धर्म का अंग न होकर विदेशियों की देन है और इसे समाप्त करने की दिशा में सरकार को जहां कानून का सहारा लेना होगा वहाँ इसके लिए लोगों के दिल और दिमाग से इस कुप्रथा को समाप्त करने के लिए बौद्धिक एवं सामाजिक दोनों ही प्रकार की क्रान्तियाँ करनी होंगी।

(1971 में प्रकाशित 'विदेशी देन : अस्पृश्यता' से **सम्पादित**)

●**प्रो. शामलाल कौशल** (मो. 09416359045)
मकान न. 975-बी / 20, राजीव निवास, शक्ति नगर, ग्रीन रोड, रोहतक- 124001

यह सब क्यों और किसके लिये

कभी आपने सोचा है कि परमात्मा ने हमें यह मनुष्य जन्म क्यों प्रदान किया है? इस संसार की रचना करने का ईश्वर का कोई ना कोई उद्देश्य तो होगा ही। परमात्मा ने नदियां, पहाड़, जीव, जन्तु, वनस्पति आदि जो बनाये हैं, वे इस संसार को सुंदर बनाने के लिये तो हैं ही, साथ में मानव जीवन को सुविधाजनक बनाने के लिये भी हैं। इस धरती पर हमें लाने का कोई भी उद्देश्य क्यों न हो, परमात्मा यह तो चाहता है कि सुख, चैन, संतोष, आपसी प्रेम, प्यार, सहयोग, समर्पण भावना के साथ जीयें। कष्ट आने पर एक दूसरे की सहायता करें। विपत्ति में घबरायें नहीं, संयम रखें, धैर्य से काम लें। विपत्ति है, आई है, कुछ समय पश्चात् चली जायेगी।

आदमी अपना काम ईमान दारी से करे, कठिन परिश्रम करे, परिवार के सदस्यों के साथ सुख, शांति तथा संतोष से खाये। अगर हो सके तो जरूरतमंदों की यथा संभव मदद करे। काम, क्रोध, लोभ, मोह तथा अहंकार को अपने ऊपर हावी न होने दे। नैतिकता का दामन न छोड़े। परलोक सुधारने के लिये निर्मल मन से ईश का सिमरन करे। दूसरों का आदर-सम्मान करे, किसी का हक न मारे। माता-पिता, गुरुओं तथा बुजुर्गों की सेवा करे।

लेकिन, रुको, देखो आज का मनुष्य क्या कर रहा है! आज के मनुष्य के पास जीवनयापन की सब सुविधायें हैं, लेकिन मन की शांति नहीं। यूं ही भटक रहा है। सुबह से लेकर शाम तक पैसा कमाने के चक्कर में इस कद्र उलझा रहता है कि उसे खाना, पीना, सोना, परिवार के सदस्यों तथा दोस्तों का भी ध्यान नहीं आता। उसे अपने शरीर की देखभाल करने का न तो समय मिलता है और न ही ध्यान आता है। पैसा कमाने के लिये वह भ्रष्ट तरीकों का इस्तेमाल करता है। झूठ, कपट, पाखंड का सहारा लेता है। आदमी से पूछा जाये कि भाई इतने पैसों का क्या करोगे? आपने कभी फिल्म का यह गाना सुना होगा 'बहुत दिया, देने वाले ने तुझ को, आंचल में ना समाये तो क्या कीजे?' आमतौर पर आदमी ज्यादा पैसा कमाने के लिये अपने परिवार की भी बलि चढ़ा देता है।

मां-बाप दोनों ही कामकाजी हैं तो बच्चे मां बाप के प्यार, मार्गदर्शन, लाड़ प्यार तथा अच्छे संस्कारों को ही नहीं तरसते रहते, बल्कि कई बार गुस्सैल, लापरवाह, जिद्दी, कामचोर, आपराधिक प्रकृति के बन जाते हैं। जितना ज्यादा कमाया जाता है उतना ही अपनी देखभाल तथा नौकरों पर खर्च कर देना पड़ता है। फिर यह भागदौड़ क्यों? और किसके लिये?

आज आदमी ने विज्ञान की तरक्की से न जाने क्या-2 हासिल कर लिया है। इसके बावजूद तरक्की से यह पता नहीं किया जा सका कि आदमी आता कहाँ से और मरने पर कहाँ जाता है। संसार चक्र चलने की विज्ञान चाहे कैसी भी व्याख्या करे, फिर भी सर्व शक्तिमान, सर्वत्र, सर्वज्ञ परमात्मा के अस्तित्त्व से इनकार नहीं किया जा सकता। हम जब परमात्मा के अस्तित्व को नकार देते हैं, उससे डरते नहीं, तभी कोई न कोई पाप करते हैं। हर आदमी को कर्मों का फल तो मिलता ही है। यहीं का किया हुआ अच्छा/बुरा इसी जीवन में फलीभूत होता है। जिस काम का फल इस जन्म में नहीं मिलता, अगले जीवन में अवश्य ही मिल जायेगा। फिर हाय तौबा, मारामारी किसके लिये? क्षणिक सुख के लिये?

आदमी वासना का शिकार होकर बलात्कार, गैंगरेप जैसा घिनौना पाप क्यों करता है? कन्या भ्रूण हत्या करके जीव हत्या क्यों करता है? जब सभी जानते हैं, मानते हैं कि शाकाहारी भोजन ही सर्वश्रेष्ठ है, फिर मनुष्य मांसा हारी बनकर जीवों को मार कर खाने से अपने सिर पर पाप की गठड़ी क्यों उठाता है। आदमी का खुद का जीवन पानी के बुलबुले की तरह है। पता नहीं श्वास कब रुक जाये। आदमी ऊंची-2 तथा पक्की भूचाल रोधी इमारतें बनवाता है, लेकिन उसे खुद पता नहीं होता उसने कितनी देर जीना है। जिन घर वालों के लिये रातदिन वह धन सम्पत्ति

एकत्र करता है, जिनके सुख के लिये वह योजना बनाता है, त्याग करता है, उसका श्वास रुकते ही वे उसे घर से निकालने, दाह संस्कार करने का समय निर्धारित करने में सिर्फ पांच मिनट लगाते हैं। घर वालों की हमारे साथ मोह की बातें झूठी हैं, कोई किसी का साथ नहीं दे सकता। मरने पर सब कुछ यहीं रह जाता है। हमारे धन का मालिक कोई और बन जाता हैं। फिर आदमी क्यों पाप करता है, हेराफेरी किसलिये? क्यों मोह, काम, क्रोध, लोभ तथा अहंकार के झूठे चक्र में फंसता है।

कमाल की बात तो यह है कि हम रात दिन पाप कमा रहे हैं। झूठ, कपट, फरेब, हेरा फेरी, बेईमानी का इस्तेमाल कर रहे हैं। हमें फिर भी यह बात समझ में नहीं आती कि हमे अपने कर्मों का फल तो भुगतना ही पड़ेगा। आज कल के विद्याहीन तथाकथित धर्मगुरु लोगों को सन्मार्ग दिखाने के बदले खुद दुनियादारी की अंधी दौड़ में इस कद्र फंसे हैं कि उनसे कोई उमीद करना भी बेवकूफी है। बार-2 यह प्रश्न मन को तकलीफ देता है कि इस नश्वर दुनिया में हम इस कद्र बेफिक्र, बेखौफ बैठे हैं जैसे कि हमें यहां सदा रहना है। कई पैगम्बर, पीर, फकीर, अवतार, मानव, दानव आये, अपना रोल अदा किया और दुनिया से कूच कर गये। फिर हम तो किस खेत की मूली हैं?

क्या धन हमारे काम आयेगा हमारे आखिरी वक्त में? हमारे बेटे-बेटियां, रिश्तेदार मित्र हमें मौत के मुंह से बचा पायेंगे? हमारा ऊंचा रुतबा/हैसियत किसी काम आयेगी? हमें जग का सबसे ज्यादा समझदार आदमी होने की गलतफहमी क्यों न हो, क्या हमें कोई ऐसी तरकीब सूझेगी जो हमें मौत के मुंह से बचा सके? जवाब है नहीं।

तो फिर आदमी अपनी औकात को क्यों नहीं समझता। इनसान होकर भी इनसानियत पर क्यों नहीं चलता। दूसरों के साथ व्यवहार करते समय आत्मसंयम, सब्र, गरिमा का आचरण करता हुआ नैतिकता को याद क्यों नहीं करता। इहलोक/परलोक सुधारने के लिये प्रयत्न क्यों नहीं करता। सात्विक जीवन क्यों नहीं जीता। पाप करते समय परमात्मा से क्यों नहीं डरता, जन्म देने वाले देवता स्वरूप मां बाप की सेवा के काम में टालमटोल क्यों करता है?

कड़वे मीठे बोल

●प्रोफेसर शाम लाल कौशल

◆बूढ़े माँ-बाप की वसीयत के हकदार बनने से पहले उनके बुढ़ापे का सहारा बन जाना, क्योंकि माँ-बाप की बुढ़ापे की दुआएं करोड़ों की दौलत के बराबर होती हैं।

◆बस इतनी कृपा तो अवश्य करना भगवन्! कि आप के सिवा कहीं और ना सर झुकाना पड़े।

◆बहुत गलतियाँ हुईं जीवन में-मगर जो गलती लोगों को पहचानने में हुई, उसका नुकसान सबसे ज्यादा हुआ।

◆कर्म ऐसा रेस्टोरेंट है, जहाँ ऑर्डर देने की जरूरत नहीं, हमें वही मिलता है जो हमने पकाया है।

◆हर आदमी की कमजोरी उसकी औलाद होती है जिसके लिए वह झुकता भी है, टूटता भी है।

◆घर तब तक नहीं टूटता जब तक फैसला बड़ों के हाथ में होता है, जब घर का हर कोई खुद को बड़ा समझने लगे घर टूटने में देरी नहीं लगती।

◆यह दुनिया तब तक स्वर्ग है, जब तक आपके मां-बाप जिंदा हैं।

◆पैसे से मिली खुशी कुछ समय के लिए साथ रहती है, लेकिन अपनों से मिली खुशी जीवन भर साथ रहती है।

◆शोर किया करता था जो दरिया समंदर की गहराइयों में खो गया। चुलबुला सा नटखट बचपन मेरा जवानी की तनहाइयों में खो गया।

दिल खुश हो जाएगा!

●प्रोफेसर शाम लाल कौशल

किसी का निस्वार्थ भला करके देखो
दिल खुश हो जाएगा!

अपना काम ईमानदारी से करके देखो
परिश्रम से रोटी कमा के खा कर देखो
गलती करने वाले को माफ करके देखो
किसी रोते हुए को हंसा कर देखो
किसी गिरे हुए को उठाकर देखो
दिल खुश हो जाएगा!

किसी का मन रोशन करके देखो
बुजुर्गों की सेवा करके
उनका आशीर्वाद लेकर देखो
आप अपना काम खुद करके देखो
कई दिन के किसी भूखे को
खाना खिला कर देखो
चिंता मुक्त होकर जीकर देखो
दिल खुश हो जाएगा!

किसी दुखी के कंधे पर हाथ रख
सान्त्वना देकर देखो
दिल खुश हो जाएगा।

क्रांतिकारियों की दुर्गा भाभी

भारत के स्वतन्त्रता आन्दोलन के इतिहास में कई महिलाओं का योगदान रहा है। 'दुर्गा भाभी' के नाम से प्रसिद्ध ऐसी ही महान विभूति थीं- दुर्गा देवी बोहरा। उनका जन्म प्रयाग में 7 अक्टूबर, 1907 को हुआ था। 11 वर्ष की आयु में उनका विवाह लाहौर के एक संपन्न परिवार में भगवती चरण बोहरा से हुआ। भगवती चरण के मन में अंग्रेजों को देश से बाहर निकालने की धुन सवार थी। वे हिंदुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन (एचएसआरए) से जुड़कर क्रांतिकारी आंदोलन में शामिल हो गए।

विवाह के बाद शिक्षण कार्य में रत दुर्गा भाभी ने शीघ्र ही स्वयं को पति के काम में सहभागी बना लिया। भगवती चरण प्राय: दल के काम से बाहर या फिर भूमिगत रहते थे। ऐसे में सूचनाओं के आदान-प्रदान का काम दुर्गा भाभी ही करती थीं। वे प्राय: तैयार बम या बम की सामग्री एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाती थीं।

जब भगतसिंह और शिवराम राजगुरु ने लाहौर पुलिस अधिकारी जॉन पी. सांडर्स का वध किया तो उनकी खोज में पुलिस नगर के चप्पे-चप्पे पर तैनात हो गई। उन्हें लाहौर से निकालना बहुत जरूरी था। तब दुर्गा भाभी सामने आईं तथा पुलिस की आंखों में धूल झोंककर भगत, सिंह, सुखदेव और चंद्रशेखर आजाद के साथ रेल के जरिए लाहौर से निकल गईं।

भगतसिंह तथा बटुकेश्वर दत्त (दिल्ली षड्यंत्र मामला) और सुखदेव (लाहौर षड्यंत्र मामला) की गिरफ्तारी के बाद दुर्गा देवी को पंजाब में एचएसआरए को पुनर्गठित करने का कार्यभार सौंपा गया। वे 'भगत सिंह रक्षा समिति' की एक प्रमुख सदस्य थीं, जिसकी स्थापना भगतसिंह तथा उनके साथियों की रिहाई के लिए मुकदमा लड़ने हेतु की गई थी। दुर्गा देवी का काम जेल में बंद क्रांतिकारियों, उनके वकीलों और उन क्रांतिकारियों के बीच संपर्क स्थापित करने का था जो फरार थे।

दुर्गा भाभी के जीवन में सर्वाधिक दु:खद क्षण तब आया, जब भगवती चरण की रावी नदी के तट पर बम का परीक्षण करते हुए 28 मई, 1930 को मृत्यु हो गई। 12 सितंबर, 1931 को वे भी गिरफ्तार कर ली गईं। उन्हें 15 दिन तक हवालात और फिर तीन साल तक नजरबंद रखा गया। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद वे पुन: शिक्षण कार्य में रत हो गईं। लखनऊ में एक विद्यालय और 'शहीद स्मारक शोध केंद्र एवं संग्रहालय' की स्थापना करने वाली दुर्गा भाभी का देहांत 14 अक्टूबर, 1999 को हुआ।

(लोकहित प्रकाशन की हर दिन पावन पुस्तक से साभार)

प्रेरणा-पथ

❍ गलतियाँ बताने वाला बच्चा भी शिक्षक है, भावनाओं को समझने वाला अनपढ़ भी स्नातक है।

❍ आलोचना उसी की सार्थक होती है जो सदाशयता का भाव अपने भीतर रखता है।

❍ सबका सम्मान करना आपके संस्कार हैं, लेकिन अपने आत्म सम्मान का ध्यान रखना आपका अधिकार है।

❍ वाणी में बहुत ताकत होती है। कड़वा बोलने वालों का शहद भी नहीं बिकता और मीठा बोलने वाले की मिर्च तक बिक जाती हैं।

❍ महान बनना इतना कठिन नहीं, जितना महान बने रहना।

❍ जो सदा जमाने से शिकायत करते रहते हैं, उन्हें एक दिन अवश्य एहसास होगा कि जिंदगी सामने थी और उन्होंने सारा समय दूसरों को कोसने में बर्बाद कर दिया।

●कर्मवीर आर्य आर्यवीर

आर्यसमाज बीकानेर गंगायचा अहीर, रेवाड़ी

एक अल्पज्ञात स्वतन्त्रता सेनानी, अमर बलिदानी

सेठ रामदास जी गुड़वाले

जिसके महलों की दीवारें सोने से जड़ी थीं, जिसके खजानों की मिसालें पूरे हिंदुस्तान में दी जाती थीं, वह व्यक्ति जब देश पर संकट आया, तो बिना एक पल सोचे अपना सब कुछ मातृभूमि पर वार गया। नाम था सेठ रामदास जी गुड़वाले। एक ऐसा वीर, जिसने न सिर्फ अपनी दौलत, बल्कि अपनी जान भी भारत को आजाद करने की लड़ाई में कुर्बान कर दी। अंग्रेजों को उनकी देशभक्ति इतनी चुभी कि फांसी से पहले उन्हें खंभे से बांधकर भूखे शिकारी कुत्तों के सामने छोड़ दिया गया। जिंदा ही नोच डाला गया और फिर उस अधमरे शरीर को चौक में फांसी पर टांग दिया गया– ताकि बाकी हिंदुस्तान डर जाए। लेकिन क्या हम आज भी उस बलिदान को याद करते हैं?

1857 की क्रांति जब दिल्ली पहुँची, तब देशभक्ति की एक मिसाल बनकर उभरे सेठ रामदास जी गुड़वाले। दिल्ली के एक समृद्ध अग्रवाल परिवार में जन्मे रामदास जी एक अरबपति व्यापारी और बैंकर थे। कहा जाता था कि उनके पास इतना सोना-चांदी और जवाहरात था कि उसकी दीवारों से गंगा का पानी भी रोका जा सकता था।

जब मेरठ से शुरू हुई स्वतंत्रता की चिंगारी दिल्ली पहुँची और दिल्ली में देशी सेनाएं एकत्र होने लगीं, तो भोजन और वेतन की समस्या खड़ी हो गई। सेठ रामदास जी बादशाह बहादुरशाह जफर के निकट थे। उन्होंने राजा की हालत देखकर अपनी पूरी संपत्ति देश पर न्योछावर कर दी और कहा– मातृभूमि की रक्षा होगी तो धन फिर कमा लेंगे।

रामदास जी ने सिर्फ धन नहीं दिया। सत्तू, आटा, अनाज, बैल, ऊँट, घोड़ों के चारे से लेकर सेना-खुफिया तंत्र तक, का इंतजाम खुद किया। उन्होंने पूरे उत्तर भारत में जासूसी नेटवर्क खड़ा कर दिया। देश के कोने-2 में मनसब दारों और राजाओं से संपर्क कर उन्हें संगठित करने लगे।

अंग्रेज हैरान थे कि एक व्यापारी इतनी रणनीति कैसे रच सकता है। जब उन्होंने चाँदनी चौक में जहरीली शराब की पेटियाँ रखवाकर अंग्रेज सैनिकों को मार गिराया,

इतिहासकार ताराचंद ने अपनी किताब 'हिस्ट्री ऑफ फ्रीडम मूवमेंट' में लिखा— 'सेठ रामदास उत्तर भारत के सबसे अमीर सेठ थे, लेकिन अंग्रेजों को उनके धन से ज्यादा उनके संकल्प से डर लगता था।'

तब अंग्रेजों को यकीन हो गया कि अगर भारत पर राज करना है, तो पहले रामदास को खत्म करना होगा।

अंततः एक दिन उन्हें धोखे से गिरफ्तार कर लिया गया। फिर जो किया गया वो हैवानियत से भी परे था। उन्हें एक खंभे से बाँध दिया गया और उन पर भूखे शिकारी कुत्ते छोड़ दिए गए। वे जीवित ही शरीर से नोचे गए। फिर भी संतोष नहीं हुआ तो उन्हें अधमरी अवस्था में दिल्ली के चाँदनी चौक की कोतवाली के सामने फांसी पर लटका दिया गया।

इतिहासकार ताराचंद ने अपनी किताब 'हिस्ट्री ऑफ फ्रीडम मूवमेंट' में लिखा– 'सेठ रामदास उत्तर भारत के सबसे अमीर सेठ थे, लेकिन अंग्रेजों को उनके धन से ज्यादा उनके संकल्प से डर लगता था।' आज इतिहास में उनका नाम शायद कहीं दर्ज नहीं, लेकिन आजादी के हर फूल में उनके खून की एक बूंद शामिल है।

तुम न समझो देश को आजादी यूं ही मिली है।
हर कली इस बाग की कुछ खून पीकर ही खिली है।
मिट गए वतन के वास्ते, दीवारों में जो गड़े हैं।
महल अपनी आजादी के,
शहीदों की छातियों पर ही खड़े हैं।

साभार : अनिल गुप्ता वाल

इतिहास कथा

राष्ट्रीय कर्त्तव्य

स्वदेशी और विदेशी का अर्थ

●प्रमोद भार्गव

अगले ही क्षण उसके मन में विचार आया कि दिमित्र कौन है ? क्या भारतवासी हैं ? नहीं। नहीं। वह भारतवासी नहीं है, विदेशी है। भारत की धन संपदा को लूटने आया है। आज यह मगध को लूटने की सोच रहा है कल कलिंग को लूटने की सोचेगा।

लगभग तेरह सौ वर्ष पुरानी बात है। कलिंग और मगध दो शक्तिशाली पड़ोसी राज्य थे। इन दोनों राज्यों में करीब सौ वर्ष तक लगातार भयंकर युद्ध चलता रहा और अंतत: हार कलिंग की हुई। मगध वासियों ने कलिंग वासियों का खूब अपमान किया। यहां तक कि उनकी धार्मिक भावनाओं को भी ठेस पहुंचाई। वे कलिंग की पवित्र एवं सम्मानित शीतलनाथ जिन की मूर्ति भी उठा ले गए।

ईसा से लगभग दो सौ पच्चीस वर्ष पूर्व कलिंग के राजा महा मेघवाहन का पुत्र खारवेल गद्दी पर बैठा। खारवेल बहुत चतुर, दूरदर्शी, उदार और साहसी राजा था। सबसे पहले उसने अपनी मृतप्राय: सेना में नए प्राण फूंक, उसे प्रोत्साहित किया। अपने शासनकाल के प्रथम वर्ष में उसने नगर का पुनर्निर्माण कराया, तालाबों, कुओं की मरम्मत करवाई, बाग-बगीचे ठीक कराए, पेड़ लगाए। इन सभी कार्यों में भरपूर पैसा खर्च करने के बाद भी राजा ने प्रजा से कर आदि नहीं लिया। सारा पैसा खजाने से खर्च किया। राजा के इस उदार निर्णय से प्रजा में अपार हर्ष फैल गया। एक वर्ष में ही राजा ने प्रजा का विश्वास प्राप्त कर लिया।

अपने शासनकाल के दूसरे वर्ष में खारवेल ने अपने राज्य की सीमा विस्तार की प्रतिज्ञा की और उसने सातकर्णी नामक राजा के राज्य पर आक्रमण करने के लिए कूच कर दिया। खारवेल ने कृष्णा और मूसी नदियों के संगम पर स्थित कृषीक नगर पर आक्रमण किया और अपने कब्जे में ले लिया। इस आक्रमण से खारवेल को पर्याप्त यश और संपत्ति की प्राप्ति हुई।

कलिंगवासियों ने वर्षों बाद विजय देखी थी। उनका खोया हुआ आत्मविश्वास और हौसला वापस लौट आया। गर्व से उनका सिर ऊपर उठ गया। प्रजा में से अधिकांश लोग स्वेच्छा से सेना में शामिल होने लगे।

खारवेल को कलिंग पर शासन करते हुए सात वर्ष हो चुके थे। इस दौरान उसकी सफलताएं कुछ कम नहीं थीं। उसने राज्य के बल, सम्पन्नता और सीमाओं का विस्तार किया। फिर भी वह संतुष्ट नहीं था। मगध द्वारा कलिंग का अपमान किए जाने का बदला लेने की ललक उसके मन में थी। मगध को पराजित करके वह शीतलनाथ जिन की मूर्ति वापस लाना चाहता था। मगर यह कार्य बहुत कठिन था। मगध पर आक्रमण करके उस पर विजय प्राप्त करना लोहे के चने चबाना था। मगध की राजधानी पर सीधे घेराबंदी नहीं की जा सकती थी। राजधानी की सुरक्ष उसके दक्षिण में स्थित गौरथगिरि किले द्वारा की जाती थी लेकिन खारवेल ने हिम्मत नहीं हारी। उसने अपने सेनानायकों से परामर्श किया और गौरथगिरि पर देखते ही देखते कब्जा करने के बाद आगे बढ़ कर मगध की राजधानी राजगृह की चारों ओर से घेराबंदी कर ली।

इसी समय खारवेल को अपने जासूसों द्वारा सूचना

मिली कि यूनान का यवन (ग्रीक यूनानी) राजा दिमित्र (डिमिट्रियस) एक बड़ी सेना के साथ मगध पर हमला करने जा रहा है।

एक क्षण के लिए खारवेल के मन में विचार आया कि दिमित्र को साथ मिला कर मगध पर आक्रमण करने से विजय आसान हो जाएगी। किन्तु दूसरे ही क्षण उसके मन में विचार आया कि दिमित्र कौन है ? क्या भारतवासी हैं ? नहीं। नहीं। वह भारतवासी नहीं है, विदेशी है। भारत की धन संपदा को लूटने आया है। आज यह मगध को लूटने की सोच रहा है कल कलिंग को लूटने की सोचेगा।

ऐसी विकट स्थिति में मुझे मगध की सहायता करनी चाहिए और दिमित्र को खदेड़ना चाहिए। यही मेरा राष्ट्रीय दायित्व है, कर्त्तव्य है। आखिर मगध का राजा तो हममें से ही है और भारतीय ही है। खारवेल ने अपनी सेनाओं को दिमित्र से युद्ध करने का आदेश दे दिया। दिमित्र को जब यह सूचना मिली कि खारवेल की सेनाएं मुझसे लड़ने आ रही हैं तो उसने अपनी सेनाओं को वापस लौटने का आदेश दे दिया। वह एक साथ मगध और कलिंग की सेनाओं से नहीं लड़ सकता था। उसका तो यह अनुमान था कि खारवेल दक्षिण दिशा से मगध पर आक्रमण करेगा और वह पश्चिम से मगध पर हमला करेगा और अंत में खारवेल से हाथ मिला कर विजय आसान हो जाएगी और लूट का माल आधा-आधा बांट लेंगे, परन्तु दिमित्र ने महसूस किया कि खारवेल जितना पराक्रमी है उतना ही देशभक्त और दूरदर्शी है। वह एक विदेशी और एक स्वदेशी भारतवासी का मतलब अच्छी तरह समझता है।

अंततः दिमित्र अपनी सेनाओं के साथ वहां से भाग निकला। उसके बाद किसी भी यवन राजा ने भारत की ओर आंख उठाने का प्रयास नहीं किया।

मगध के राजा ने खारवेल के प्रति आत्मीय भाव से कृतज्ञता व्यक्त की और शीतलनाथ जिन की मूर्ति वापस कराते हुए कहा, 'महामहिम ! आपने मगध को हताहत होने और लूटपाट से तो बचाया ही, साथ ही भारत में किसी विदेशी के पैर जमने से पहले ही उखाड़ दिए। मगधवासी आपका यह उपकार जीवन भर नहीं भूलेंगे। हमारी सभ्यता और संस्कृति अस्तित्व में बनी रह सकेगी।'

अपनी पैतृक भूमि दान में देकर गुरुकुल मटिण्डु की स्थापना कराने वाले

वीरात्मा चौधरी पीरू सिंह

●●●चौधरी पीरूसिंह एक बार टांगे में जा रहे थे। साथ में एक थानेदार बैठा था, जो ब्रिटिश भक्त था। उसने आर्यसमाज के लिए कुछ अपशब्दों का प्रयोग कर दिया। चौधरी पीरूसिंह ने उसकी अच्छी ठुकाई कर दी। फिर अपना नाम पता बता कर कहा कि जो कार्रवाई करनी हो कर लेना। नाम सुनकर थानेदार कांप गया और उसने माफी मांगकर अपना पिंड छुड़ाना ही उचित समझा। (चौ. पीरूसिंह आर्यसमाजी बनने से पहले एक खतरनाक बागी थे, जिनके नाम से ही पुलिस कांपती थी।)

●●●जब गुरुकुल मटिण्डु की स्थापना हुई तो विरोधियों ने यह अपवाद फैला दिया कि पीरूसिंह ने तो गुरुकुल के चन्दे के नाम पर अपना घर भर लिया है। सामने आने की किसी की हिम्मत नहीं थी। एक दिन पीरूसिंह जी ने यही बात एक नापित के मुंह से सुनी। वे उसको पकड़ कर अपने घर ले गए। उसे पूरा घर दिखा कर कहा- देखो यह पीरू का घर है और पीरू आपके सामने है। बताओ, यहाँ क्या भर रखा है? नापित ने लज्जित हो कर क्षमा मांगी कि मैंने तो ऐसे ही लोगों के बहाकने पर कह दिया था।

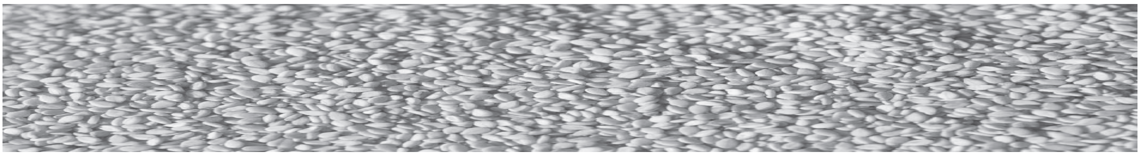

आयुर्वेद में तिल के प्रयोग

❑डॉ. संजय कुमार, कुरुक्षेत्र-136118

तिल को पूरे भारत में तिल के नाम से जाना जाता है। जब तिल खरीदें तो यह कह कर खरीदें कि काले तिल खाने के लिए चाहिएँ न कि पूजा या हवन के लिए। साफ काले तिल हर दुकान पर नहीं मिलते। पूजा के लिए बेचे जाने वाले काले तिल खाने के लिए उपयोगी नहीं हैं। जिस तिल में कीड़ा हो या घुन लगा हो, वह भी न लें। यदि अच्छा काला तिल न मिले तो सफेद या लाल तिल ले सकते हैं। तिल को उपयोगी बनाने के लिए तिल को पानी से धो कर अच्छी तरह से सुखा लेना चाहिए। यहाँ बताए गए प्रयोगों के लिए तिल को न भुनें। केवल कच्चे तिल ही गुणकारी हैं।

आयुर्वेद के मतानुसार तिल बलवर्धक, केशों के लिए हितकर, स्तन में दूध बढ़ाने वाले, व्रण रोपक (घाव को तेजी से भरने वाले), चर्मरोग में हितकारी, दन्त-रोग नाशक, कब्ज करने वाले, वातनाशक और बुद्धिवर्धक होते हैं। (वनौषधि चंद्रोदय के अनुसार)

किसे तिल नहीं खाने चाहिएँ

1- गर्भवती स्त्री को तिल से बना हुआ कुछ भी न दें। परंतु बच्चा पैदा होने के कुछ दिन बाद (10 दिन बाद) तिल देना गुणकारी है, दूध बढ़ाता है।

2- स्थायी एनीमिया के रोगी को तिल बिलकुल न दें। स्थायी एनीमिया जैसे थेलिसिमिया, एडिसनस डीजीज, परनीसियास एनीमिया, सिक्कल सेल एनीमिया के रोगी को तिल हानिकारक हैं। परंतु परेशान न हों। ये रोग एक लाख में केवल 1 व्यक्ति को होते हैं। चरक संहिता में पांडु रोग में तिल का निषेध किया गया है और मेरा अनुभव भी यही है।

3- पाँच साल से कम उम्र के बच्चों को तिल न दे।

4- अम्लपित्त में तिल का प्रयोग न करें।

प्रयोगः-

1- यह प्रयोग गद निग्रह रसायन तंत्र श्लोक 60 का है। गदनिग्रह आयुर्वेद का प्राचीन तथा अत्यंत विश्वनीय ग्रंथ है। यही बात भावप्रकाश में भी कही गई है।

दिने दिने कृष्णतिलप्रकुञ्च समश्नत शीतजलानुपानम्।
पोषश्शरीरस्य भवत्यनल्पो दृढ़ा भवन्त्यामरणाच्च दंता॥

प्रतिदिन काले तिल चबा कर खा कर ठंडा पानी पीने से शरीर का अच्छी तरह से पोषण होता है, दाँत मजबूत होते हैं और दाँत मृत्यु तक बने रहते हैं। (केवल 1-2 चम्मच ही चबा कर खाएँ, अधिक मात्रा मे अपच करते हैं।)

2- यह प्रयोग आयुर्वेद के मुख्य ग्रंथ सुश्रुत संहिता अर्श चिकित्सा में लिखा है। यही प्रयोग भावप्रकाश, भैषज्य रत्नावली अर्श (बवासीर) चिकित्सा श्लोक 21 में है।

प्रतिदिन काले तिल चबा कर खाकर ठंडा पानी पीने से यह अवश्य बवासीर को नष्ट करता है। यह प्रयोग शरीर को पोषण देता है और इससे दाँत दृढ़ रहते हैं। (यह प्रयोग उस बवासीर में बहुत लाभ करता है जिसमें मस्सों से खून नहीं बहता और मस्से प्राय: बहुत कठोर और सूखे होते हैं)

3- यह प्रयोग चरक संहिता चिकित्सा स्थान अर्श रोगाधिकार का है। काले तिल के चूर्ण में मक्खन और मिश्री मिलाकर खाने से खूनी बवासीर ठीक होती है और खून बहना बन्द हो जाता है। मक्खन स्वयं घर का बनाया लें। बाजार में 80 प्रतिशत मक्खन कृत्रिम synthetic हैं और तेल से बनाए जाते हैं। अमूल मक्खन असली है परंतु उसमें नमक मिलाया हुआ है।

4- **खांसी में** तिल का प्रयोग- 1 चम्मच तिल, 5-7 दाने काली मिर्च, 10 ग्राम मिश्री या गुड़। इन्हें 150 ग्राम पानी में चाय की तरह उबाले। जब अच्छी तरह उबल जाए तो छान कर गर्म ही पी लें। इसके 1 घण्टे तक ठण्डा पानी न पीएँ। सूखी खांसी में बहुत लाभ होता है। लगभग 7 दिन तक प्रतिदिन 2 समय लें।

5- एक विशेष प्रयोग

साफ तिल 100 ग्राम, मिश्री 100 ग्राम, भृंगराज चूर्ण 100 ग्राम (व्यास कम्पनी का मिल जाएगा) आंवला

रसायन (पतंजली) 100 ग्राम मिलाकर रख लें। 1 चम्मच सुबह खाली पेट पानी से लें। इस प्रयोग को कुछ इस तरह भी कर सकते है। तिल के अतिरिक्त सभी वस्तुओं को मिला कर रख लें। तिल को अलग रख लें। इन दवाओं को एक चम्मच पानी या दूध से लें। तिल को ऊपर से या अलग किसी समय में चबा कर पानी या दूध पी लें। क्योंकि तिल मिलाकर रखने से दवाई में 1 महीने में ही कीड़े हो जाते हैं व लेते समय चूर्ण मे मिला हुआ तिल गले में खारिश पैदा करता है। जवानी में बाल सफेद बाल दोबारा काले हो जाएंगे। आंखों के लिए गुणकारी है, दाँतों का हिलना रुक जाता है। पुरानी कब्ज में लाभ होता है, शरीर की रोग प्रतिरोधक शक्ति बढ़ती है तथा आलस्य दूर होता है। सभी मौसम में प्रयोग कर सकते हैं।

6- बार बार पेशाब आना।

तिल 50 ग्राम, अजवायन 20 ग्राम, गुड़ 100 ग्राम। तिल और अजवायन को पीस लें। गुड़ मिला कर रख लें। आधा चम्मच सुबह शाम पानी से लें। जिन्हें रात को बार बार पेशाब के लिए उठना पड़ता है वे रात को सोने से पहले 1 चम्मच मिश्रण पानी से लें। छोटे बच्चे जो बिस्तर में पेशाब करते हैं, उन्हें आयु के अनुसार एक चौथाई चम्मच से आधा चम्मच रात को सोते समय पानी से दें। रात को दूध न पिएँ। 3 साल से कम के बच्चे को न यह न दें।

7- पेट की गैस में तिलः-

धुले हुए (छिलका हटाए हुए) तिल 100 ग्राम, गुड़ 50 ग्राम, सोंठ 25 ग्राम मिलाकर पीस लें। 1 चम्मच दिन में 2 बार गरम दूध से लें। पेट की गैस जो किसी भी दवाई से ठीक न हो वह भी इससे ठीक हो जाती है।

8- ताकत के लिएः-

शरीर में कैल्शियम की कमी पूरी करता है। जिन्हें पेट मे गैस रहती है, भोजन नहीं पचता, उनको बहुत लाभ करता है। विशेष रूप से जिनको बार बार नजला जुखाम हो जाता है, सिर में दर्द रहता है, सारा शरीर सुस्त रहता है, काम में मन नहीं लगता, बच्चों की स्मरण शक्ति कमजोर हो जाती है, दाँत में समस्या है- उनके लिए चमत्कारी है। जो बच्चे को दूध पिलाने वाली माताएँ हैं, उनके लिए बहुत अधिक लाभ करता है। बोर्नविटा, कोम्प्लान, हारलिक्स, कोड लीवर आयल आदि टॉनिक इसके सामने बेकार हैं। सर्दी में प्रयोग करें। जिसे सर्दी मे सुबह निकलना पड़ता है उनके लिए तो अमृत तुल्य है। ठंड नहीं लगेगी। तेज ठंडी हवा व ओस का दुष्प्रभाव नहीं होगा।

विधिः-

बाजार से 250 ग्राम धुले हुए (छिलका हटाए हुए) तिल लें। क्योंकि इन पर कैमिकल लगा होता है इसलिए इन्हें गरम पानी से 3 बार धो लें। उसके बाद इन्हें रात भर पानी में भीगने दें। सुबह निकाल कर पीस ले। फिर लौहे या पीतल की कड़ाही में 100 ग्राम घी में धीमी आग पर अच्छी तरह भून लें। उसके बाद इसमें 250 ग्राम गुड़ कूट कर डालें। जैसे ही कड़ाही में गुड़ पिघल जाए, आग बंद कर दें तथा हिलाते रहें नहीं तो गुड़ चिपक जाएगा। ठंडा होने पर इसमें 50 ग्राम शहद मिलाएँ। शहद गर्म में न मिलाएँ। इच्छा अनुसार पीस कर छोटी इलायची या केसर मिला सकते हैं। इनमें से कोई एक ही मिलाए-

(क) विद्यार्थियों के लिए : इसमें 50 ग्राम पीपल (जिसे गरम मसाले में डालते हैं) बारीक पीस कर मिलाएँ। स्मरण शक्ति बढ़ेगी, आलस्य नहीं आएगा। व्यायाम करने की क्षमता बढ़ जाएगी। खिलाड़ियों के लिए भी बहुत उत्तम है।

(ख) पेट की गैस, नजला जुखाम के लिए 50 ग्राम बारीक पीसी हुई सोंठ मिलाएँ।

(ग) ताकत के लिए, हड्डियों की कमजोरी के लिए इसमें 100 ग्राम सितोपलादि चूर्ण (स्वामी रामदेव की दुकान से मिल जाएगा) मिलाएँ।

(घ) जिन्हें हमेशा कब्ज बनी रहती है, सिर भारी रहता है, स्मरण शक्ति कमजोर हो गई है, कानों में सांय सांय की आवाज आती है, आंखों के सामने तारे से टूटते हैं, वे इसमें 50 ग्राम बारीक पीसी हुई दालचीनी मिलाएँ।

प्रयोग का तरीकाः- 1-2 चम्मच दिन में 2 बार हल्के गरम दूध से लें। तेज गर्म दूध से न लें।

॥ओ३म्॥

स्वामी भीष्म जी महाराज के शिष्य उत्तर भारत के प्रसिद्ध भजनोपदेशक

स्व. पं. चन्द्रभान आर्य

की चुनी हुई रचनाओं का संकलन

(हरियाणा साहित्य अकादमी के सौजन्य से प्रकाशित)

भजन भास्कर

❖भक्ति ❖प्रेरणा ❖शौर्य ❖नारी, चार सर्गों में विभक्त

पृष्ठ : 98, मूल्य : ₹80 (अस्सी रुपये) केवल

पंजीकृत डाक से मंगवाने के लिए मूल्य अग्रिम भेजें।

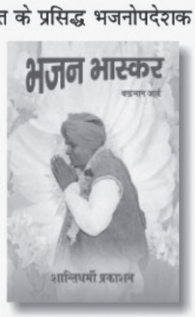

प्राप्ति स्थान

शांतिधर्मी प्रकाशन

756/3 आदर्श नगर सुभाष चौक जींद-126102 (हरयाणा)

दूरभाष : 9416253826, 9996338552

बाल वाटिका

जानते हो!

●डॉ. नरेश सिहाग 'बोहल' विद्यावाचस्पति

हमारी आकाश गंगा में 500 अरब तारे हैं। एक वर्ष में करीब 3 करोड़ सैकिंड होते हैं। यदि हम एक सैकिंड में एक तारा गिनें, तो एक वर्ष में लगातार 3 करोड़ तारों को ही गिन सकेंगे। गणितीय आकलन के अनुसार आकाश गंगा के 500 अरब तारों को गिनने के लिए 15000 वर्ष से भी अधिक का समय लगेगा।

जिस प्रकार पृथ्वी एक वर्ष में सूर्य के चारों ओर घूमती है, ठीक उसी प्रकार सूर्य को हमारी आकाश गंगा के चारों ओर घूमने में 25 करोड़ वर्ष लगते हैं। इस प्रकार सूर्य अपने जन्म से लेकर अब तक केवल 8 चक्कर ही लगा पाया है। ब्रह्माण्ड में हमारी आकाश गंगा जैसी अरबों आकाश गंगाएं हैं। आकाश गंगा के एक छोर से दूसरे छोर तक प्रकाश को पहुंचने में एक लाख वर्ष का समय लगता है। वैज्ञानिकों के अनुसार प्रकाश की गति 30 लाख किलोमीटर प्रति सैकिंड होती है। प्रकाश को चन्द्रमा से पृथ्वी तक आने में केवल एक सैकिंड से कुछ अधिक ही समय लगता है। जबकि सूर्य से हमारे तक आने में लगभग 8 मिनट का समय लगता है।

यदि हमारे देश की पूर्ण जनता एक दूसरे के सिर पर खड़ी हो जाए, तो इतनी लम्बी कतार बन सकती है, जो चन्द्रमा तक पहुंचकर वापिस आ सकती है।

सूर्य का धरातलीय तापमान 5538 सेटीग्रेड है।

पृथ्वी से सूर्य की दूरी 9 करोड़ 30 लाख मील है। सूर्य से पृथ्वी को मात्र 43 प्रतिशत शक्ति ही प्राप्त होती है। सूर्य की शक्ति का 42 प्रतिशत भाग प्रतिबिम्बित होकर शून्य में चला जाता है। 11 प्रतिशत भाग जल वाष्प सोख लेते हैं तथा 4 प्रतिशत भाग गैस तथा धूल के कण हड़प जाते हैं।

❖अत्याचार सहने से अत्याचार करने पाले पैदा होते हैं।
❖हम स्वयं ही अपने आप के सबसे बड़े सहायक हैं।
❖न्यायकारी निर्बल का भी समर्थन करो।
❖धर्म विरुद्ध आचरण करने से मनुष्य का नाश होता है।

प्रहेलिकाः

–अनुव्रत आर्य

● पानी का मैं हूँ राजा–उम्र में सबसे ज्यादा।।

● एक चीज की अजब है चाल,
कहीं न देखा ऐसा हाल–
पल में हाथ हमारे है– पल में पानी कारे है–

● एक समय एक पंछी आए–टुक देखे और छिप जाए–
रात–अंधेरे में यह चलता। दुम से उजियाला करता।।

● बाहर से है रंग बिरंग और अंदर से काली
ज्यों चलती त्यों छोटी होती इसकी चाल निराली

● कहीं नहीं मैं आता–जाता दरवाजे से मेरा नाता
न कुत्ता न चौकीदार पर कहलाता पहरेदार

● एक पुरुष और नारी चार, सब में है आपस में प्यार
ज्ञानी के मन में झट सूझे, हाथों हाथ पहेली बूझे।

कछुआ, कलम, जुगनू, पैन्सिल, ताला, अगूंठा और चार अंगुलियाँ

☺😐☺हास्यम्☺😐☺

●प्र. लावण्या 'कोकिल'

♦अनु– काकू, बहका दिया मुझे, मैं तो डूब गया होता, तुम तो कह रहे थे यहाँ घुटने तक पानी है।

हरसी– मैं क्या करूँ पुत्तर, मैंने तो सुबह देखा था, यहाँ बत्तख तैर रहे थे और उनको घुटनों तक पानी आ रहा था।

♦(रोगी चिकित्सक के पास दुबारा गया)

चिकित्सक : दवाई पी ली थी या नहीं?

रोगी– नहीं साहब, दवाई तो हरी थी।

चिकित्सक– अरे यार दवाई खा ली थी ना?

रोगी– नहीं जी, शीशी तो भरी हुई थी।

चिकित्सक– अबे गधे, दवाई को पी लिया था ना?

रोगी– अरे नहीं साहब, पीलिया तो मुझे था!

♦अध्यापक ने परीक्षा में चार पृष्ठों का निबन्ध लिखने को दिया– विषय था– 'आलस्य क्या है?'

एक विद्यार्थी ने तीन पृष्ठों को खाली छोड़ दिया और चौथे पर बड़े–बड़े अक्षरों में लिखा– 'यही आलस्य है।'

●सत्यसुधा शास्त्री

चोट की डिग्री

महर्षि दयानंदजी महाराज वेद ज्ञान की निर्मल धारा बहाते हुए अमृतसर पधारे। ऋषिजी ने एक विज्ञापन द्वारा विभिन्न विद्वानों को सत्य-असत्य का निर्णय करने का खुला निमंत्रण दिया। बहुत यत्न से विपक्षियों ने सरदार भगवानसिंह के गृह पर शास्त्रार्थ करना स्वीकार किया। दस सहस्र जनसमूह में महर्षि अटल ईश्वर-विश्वास के साथ सामना करने के लिए खड़े थे। यह 1878 ई. की घटना है। कृपाराम भी दृश्य देखने आये। वे इससे पूर्व महर्षि के उपदेशामृत का पान करके वैदिक धर्म के रंग में रंग चुके थे। ऋषि दो मास तक अमृतसर में रहे। भगवानसिंह के गृह पर विरोधियों ने ऋषिजी पर जमकर ईंट-पत्थरों की वर्षा की। भक्तों ने ऋषिजी के आगे-पीछे खड़े होकर महाराज को तो कोई चोट न लगने दी, परन्तु भक्तों को चोट तो आई ही। कृपाराम के पाँव में अच्छी चोट लगी। रक्त बहने लगा और जीवनभर लिए पाँव पर निशान पड़ गया। कृपाराम जी इस निशान को देखकर गर्वित होते थे। वे इसे ऋषि की मधुर स्मृति मानते थे। उनके लिए यह भी एक डिग्री थी।

सच्चा गुरु : मैं प्रभु से बड़ा नहीं

स्वामी दयानन्द लाहौर में वैदिक धर्म का प्रचार कर रहे थे। एक दिन जब वे एक सत्संग समारोह में पहुंचे तो प्रार्थना उपासना में लीन आर्यजन श्रद्धापूर्वक उठ खड़े हुए। स्वामी जी के स्थान ग्रहण करते ही सभी पुनः बैठ गए। प्रार्थना उपासना के बाद जब स्वामी जी प्रवचन करने लगे तो उन्होंने समझाया- जब हम प्रभु उपासना में लीन हों, तब किसी भी व्यक्ति के लिए उपासना छोड़कर नहीं उठना चाहिए। मैं सर्वशक्तिमान् प्रभु से बड़ा नहीं हूँ। आपको प्रभु उपासना छोड़कर मेरा अभिनन्दन नहीं करना चाहिए। भविष्य में प्रभु स्मरण में लीन होने के समय इस प्रकार किसी के स्वागत में कभी न उठना। स्वामीजी की बात सुनकर उनके अनुयायियों ने दयानन्द के नए रूप के दर्शन किए।

जन्म का नहीं, गुण कर्म का महत्त्व

स्वामी दयानंद सरस्वती जात-पांत के भेदभाव को मिटाने और कर्म के महत्त्व का प्रचार करने के लिये देश भ्रमण कर रहे थे। एक शाम को वे रात्रि विश्राम के लिये एक धर्मशाला में ठहर गये। गांव के लोग साधु स्वभाव के थे कई लोग इनके पास गये और उनके प्रवचन सुनने लगे।

अंधेरा ढलने लगा तो एक आदमी भोजन लेकर आ गया। स्वामी जी ने भोजन की थाली ले ली और उस सज्जन का धन्यवाद किया। अभी वो हाथ धोकर रोटी खाने ही लगे थे कि वहां बैठे लोगों में से एक ने कहा- अरे, अरे, महाराज क्या कर रहे हैं? यह रोटी नाई की है, आप शूद्र के घर की रोटी खायेंगे?

स्वामीजी को उपदेश का अच्छा मौका हाथ लग गया। रोटी को इधर-उधर उलटाते वे कहने लगे, बंधुवर, मुझे तो रोटी गेहूं की नजर आ रही है।
'पर गेंहू भी तो शूद्र के घर का है।'
स्वामीजी ने हंस कर कहा- मेरे भाई मनुष्य पहले मनुष्य है, पीछे कुछ और। यह जात-पात लोगों ने स्वार्थ के लिये बनाई है। मनुष्य कर्म से ऊंचा होता है, जाति से नहीं। जात-पांत को नहीं, कर्म को महत्त्व देना चाहिए।

उनकी बातें सुन कर वह उनके पैरों में गिर कर कहने लगा क्षमा करे महाराज। आपने मेरी आंखें खोल दीं।

कविता

●सहदेव समर्पित

जगमग जगमग दीप जले,
लगते हैं सब खिले खिले।।

भाई चारा प्रेम बढ़े,
ऐसा भी इक दीप जले।।

वैर भाव का तमस् मिटे,
हर प्राणी का प्यार पले।।

निर्दयता की आग बुझे,
करुणा फूले और फले।।

अन्धकार का गढ़ टूटे,
अनाचार की नींव हिले।।

मानवता की बगिया में,
प्रेमभाव का फूल खिले।।

जग जीवन सुरभित हो गर,
सच्चे मन से दीप जले।।

●शर्मिष्ठा आर्या (संस्कृत अध्यापिका) 9467070842
मकान नंबर 890/35 जनता कॉलोनी, रोहतक-124001

●●●

तर्ज : हमने तुमसे प्यार किया है जितना--

हमको ऋषि ने ज्ञान दिया है जितना
कौन देगा हमें उतना, किस मिलेगा उतना।।
हमको ऋषि ने वेद पढ़ाए, वेदों में अमृतवाणी।
वेदों के सागर में डुबकी लगाकर जिससे बने हम ज्ञानी।।
जितना ज्ञान ऋषिवर से मिला हमें, कौन देगा हमें उतना।
किस से मिलेगा उतना--
ईटों की वर्षा होती रही थी ऋषि ने फूलों की माना।
दुनिया ने उनको जहर पिलाया ऋषि ने अमृत जाना।
जितना ऋषि तुम सह गए जग में कौन सहेगा उतना,
कब तक सहेगा उतना।।
ओ प्यारे ऋषिवर एहसान तेरे, हम न अदा कर पाएंगे।
दुनिया में तेरे श्रेष्ठ गुणों को हम न जुदा कर पाएंगे।।
जितना ऋषि तुम दे गए 'शर्मिष्ठा' को किससे मिलेगा उतना
कौन देगा हमें उतना--

●●●

तर्ज : दिल है कि मानता ही नहीं--

दीपक तो हैं जल उठे--
पर तुम कहाँ हो प्यारे ऋषिवर यह जानते ही नहीं,
दीपक तो हैं जल उठे--
ज्योति से ज्योति दीपक जलाकर ढूंढने ऋषि को चले।
इनको मिलोगे या ना मिलोगे, यह जानते ही नहीं,
हो हो दीपक तो हैं जल उठे--
इनको मिले ना तुम जो ऋषिवर तो व्याकुल यह हो उठेंगे।
तेरे बिना यह तड़पेंगे कितने, यह जानते ही नहीं।
हो हो दीपक तो हैं जल उठे--
आपके विरह में ये दीपक बेचारे तिल तिल के हैं जल रहे
कब तक 'शर्मिष्ठा' ये जलते रहेंगे, यह जानते ही नहीं।
हो हो दीपक तो हैं जल उठे--

भजनावली

बलिदान उस योगी का

●स्वामी भीष्म जी

ऋषियों में सबसे ऊँचा है अस्थान उस योगी का।

जितने ऋषि महऋषि हुए एक शास्त्र को रट करके।
इस योगी ने सारे शास्त्र पास किये थे डट करके।
इसीलिये तो पाखंडियों से गये नहीं कभी हट के।
आये मियां मौलवी छंट करके, सब पोप भग गए नट करके।
षडयंत्र चले फिर शठ करके।
जब काशी में हुआ वेद व्याख्यान उस योगी का।1।

त्यागे पीछे दर्शन किया ना घर का पिता महतारी का।
कामदेव को बस में किया कभी मुंह ना देखा नारी का।
नहीं सामना किया किसी ने उस अखण्ड ब्रह्मचारी का।
किया सामना दुनिया सारी का, और इलाज हर बीमारी का।
था तेज ये उस तपधारी का।
सत्यार्थ है छुपा हुआ ऐलान उस योगी का।2।

आये ऋषि जब मत भेदों की घोर घटायें छाई थी।
निर्भय हो कर योगी ने वेदों की बीन बजाई थी।
शंख घण्टे हुये बन्द और आजा पे पड़ी तवाई थी।
वैदिक बिजली चमकाई थी, इंजोल कुरा घबराई थी।
इकले ने धूम मचाई थी।
लाखों बार किया दुष्टों ने अपमान उस योगी का।3।

सबसे पहले कहा कि नारी जाति पूज्य हमारी है।
नारी के अनारी रहने से ही भारत वर्ष अनारी है।
गौ करुणा निधि पुस्तक में कहा गौ माता उपकारी है।
जो इन पर चले कटारी है, गद्दारों की गद्दारी है।
हमें भेड़ बकरी प्यारी है।
जीव मात्र पर है भारी एहसान उस योगी का।4।

सृष्टि के आरम्भ से ही कोई ऐसा ऋषि नहीं आया था।
महा जहर का प्याला पी कर अमृत हमें पिलाया था।
दुनिया भर के प्राणिमात्र को सत्य मार्ग दिखलाया था।
ब्रह्मचर्य पूर्ण निभाया था, हर विषय विषवत् ठुकराया था।
जगन्नाथ ने पाप कमाया था।
कहें **भीष्म** किया विष देकर बलिदान उस योगी का।5।

आर्ष-विद्या के प्रचार के लिये समर्पित

आचार्या डॉ. सरोजिनी का निधन अपूरणीय क्षति

आर्ष कन्या गुरुकुल नरेला की उपाचार्य डॉक्टर सरोजिनी जी का देहावसान हो गया। सरोजिनी जी का जन्म 15 फरवरी सन 1958 में बोहर गांव जिला रोहतक में हुआ था। इनके पिताजी का नाम श्री राजेंद्र सिंह नांदल था जो उस समय पंजाब नेशनल बैंक में मैनेजर के पद पर कार्यरत होने के साथ-साथ बड़े जमींदार थे। उनकी माता जी का नाम श्रीमती छोटो देवी था। श्रीमती छोटो देवी मेहनती एवं उच्च विचारों वाली महिला थीं। डॉक्टर सरोजिनी जी तीन भाई एवं पांच बहनों में सबसे बड़ी थीं।

उनके परिवार में आर्यसमाज के महान् प्रचारक दादा बस्तीराम जी का आगमन होता रहता था, परिवार आर्यसमाज की विचारधारा वाला था। इसीलिए उनके दादाजी स्वर्गीय श्री सहदेव जी ने इनको मात्र 11 वर्ष की आयु में आर्ष कन्या गुरुकुल नरेला (दिल्ली) में विद्या प्राप्ति हेतु प्रवेश दिलवा दिया था। दादाजी स्वर्गीय श्री सहदेव जी ने दादा बस्ती राम जी के प्रभाव से वानप्रस्थ दीक्षा स्वर्गीय स्वामी ओमानंद जी महाराज से ले रखी थी।

डॉक्टर सरोजिनी जी एक समृद्ध एवं संभ्रांत परिवार से संबंध रखती थीं। वे बचपन से ही कुशाग्र बुद्धि, सादगी एवं ओजस्वी व्यक्तित्व से परिपूर्ण तेजस्वी विचारों से ओतप्रोत दृढ़ संकल्पित व्यक्तित्व की धनी होने के साथ-साथ निडर एवं स्पष्टवादी थीं। उन्होंने कुशाग्र मेधावी होने के कारण मात्र 17 वर्ष की आयु में ही प्रथमा, मध्यमा, शास्त्री एवं आचार्य की उपाधि प्राप्त कर ली थी। इन्होंने सन् 1983 में अजमेर में महर्षि दयानंद जी की बलिदान शताब्दी के अवसर पर स्वर्गीय स्वामी ओमानंद जी से नैष्ठिक दीक्षा प्राप्त की थी। उन्होंने आर्ष गुरुकुल पद्धति के संरक्षण एवं संवर्धन हेतु अपने नैष्ठिक व्रत एवं ब्रह्मचर्य व्रत का अपने जीवन में समर्पण भाव से निर्वहन किया। आज उनके द्वारा शिक्षित उनकी अनेकानेक शिष्याएं राजकीय सेवाओं में उच्च पदों पर कार्यरत होने के साथ-साथ उनके द्वारा प्रदत्त संस्कारयुक्त शिक्षा की बदौलत अपने गृहस्थ जीवन का संरक्षण एवं संवर्धन कर रही हैं।

उन्होंने दिल्ली विवि से बीएड एवं पीएच डी की उपाधि प्राप्त की थी। उनको विद्या प्राप्ति के साथ-साथ अध्ययन-अध्यापन सीखने सिखाने एवं स्वाध्याय का जुनून था। उनकी सांख्य दर्शन एवं योग दर्शन में विशेष रुचि होने के साथ-साथ गायत्री मंत्र की विशेष रूप से उपासक थीं। वे सुबह-शाम यज्ञोपरान्त ही भोजन ग्रहण करती थीं।

5 सितंबर को अचानक डेंगू ज्वर से पीडित होने के कारण उनको हांसी, जिला हिसार में दाखिल करवाया गया। स्वास्थ्य में सुधार नहीं होने के कारण 12 सितंबर को उनका स्वर्गवास हो गया। गुरुकुल के ब्रह्मचारी व ब्रह्म चारिणियों ने वेद मन्त्रों से घृत व सामग्री की आहुतियों के साथ उनका अन्त्येष्टि संस्कार किया। अवसर पर आर्य जगत् के गण्यमान्य व्यक्ति तथा कुटुंब जन उपस्थित रहे।

इस महान व्यक्तित्व आचार्या के इस तरह अचानक चले जाने से उनके द्वारा शिक्षित उनकी अनेकानेक शिष्याओं, आर्ष गुरुकुलीय परिवारों, उनके आत्मीय कुटुंबजनों एवं आर्य जगत् में शोक की लहर दौड़ गई। आर्यजगत् में इस महान् व्यक्तित्व की क्षति अपूरणीय है। इस महान दिव्य आत्मा का व्यक्तित्व हमारे लिए एवं समस्त आर्यजगत् के लिए सदैव अनुकरणीय रहेगा।

आर्ष गुरुकुलीय परम्परा की वरिष्ठ संवाहिनी आचार्याओं पद्मश्री आचार्या डॉ. सुकामा जी, पूर्व निदेशक शिक्षा डॉ. किरणमयी जी ने डॉ. सरोजिनी के निधन पर संवेदना व्यक्त की और उपस्थित गुरुकुल परिवार को उनके संकल्पों की ज्योति प्रज्वलित रखने का आह्वान किया।

निवेदिका : स्वर्गीय डॉक्टर सरोजिनी जी की शिष्या
शर्मिष्ठा आर्या (संस्कृत अध्यापिका) 9467070842
मकान नंबर 890/35 जनता कॉलोनी, रोहतक-124001

शांतिधर्मी परिसर जींद में आयोजित पूर्णिमा यज्ञोत्सव के दृश्य

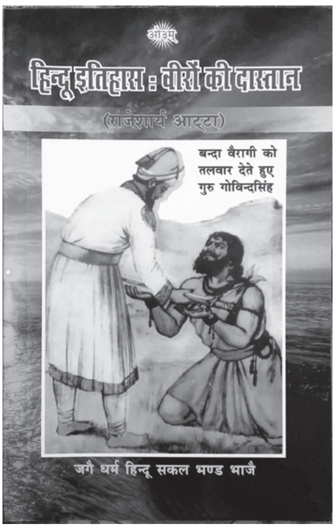

●क्या भारत का इतिहास केवल पराजयों का इतिहास है? ●पोरस विजयी हुआ था या सिकन्दर? ●हूणों को किसने हराया? ●क्या जाट गुज्जर विदेशी हैं? ●तैमूर को किसने हराया? ●गजनवी को किसने लूटा? ●क्या आर्य विदेशी हैं?

●विदेशी इतिहासकारों के मिथकों को खण्डित कर भारतीय परम्परा के वीरों के शौर्य की प्रामाणिक जानकारी देने वाली रोमांचक पुस्तक

हिन्दू इतिहास वीरों की दास्तान

●लेखक : प्रसिद्ध इतिहासगवेषक **राजेशार्य आट्टा**

●प्रकाशक : रचना प्रकाशन पानीपत

पुस्तक शांतिधर्मी कार्यालय से प्राप्त की जा सकती है।
240 पृष्ठ, रजिस्टर्ड डाक खर्च सहित 125 रुपये मात्र।
अपना पता 9416253826 व्हाट्स एप्प पर प्रेषित करें।
पुस्तक प्राप्त करने के लिये 125 रुपये मात्र जमा करायें

सम्पर्क सूत्र : 9416253826, 9996338552

आर्यसमाज बीकानेर गंगायचा अहीर का वार्षिकोत्सव धूमधाम से सम्पन्न हुआ

-अशोक आर्य, महामन्त्री-

आर्यसमाज बीकानेर-गंगायचा अहीर (रेवाड़ी) का वार्षिक महोत्सव गत 28 सितंबर मध्य रात्रि को संपन्न हुआ। दो दिनों तक इस ज्ञान गंगा को प्रवाहित करने के लिये भारतवर्ष के महान मनीषियों ने अपने-अपने तरीकों से देश व क्षेत्र की सामाजिक बुराइयों को दूर करने का आह्वान किया। आर्यसमाज विगत 150 सालों से इन समस्याओं को राष्ट्र व जनसामान्य के सामने लाता रहा है। महर्षि दयानंद का यह राष्ट्रभक्ति का संदेश जन-जन तक पहुंचे, यही इस संस्था का प्रयास रहा है।

27 सितंबर को मुख्य वक्ता के तौर पर संबोधन में सर्वश्री स्वामी आर्यवेश जी ने राष्ट्र-प्रेम व देश में फैली बुराइयों को अपने वक्तव्य का केंद्र बिंदु रखा। 28 सितंबर को आचार्य विजयपाल जी ने मुख्य वक्ता के तौर पर आर्य संस्कृति को अपनाने पर जोर दिया। इनके अतिरिक्त वैदिक विद्वान् आचार्य सोमदेव जी आर्य संचालक गुरुकुल मलारना चौड, आचार्य सहदेव समर्पित जी, संपादक शांतिधर्मी हिंदी मासिक जींद, प्रसिद्ध उपदेशिका विदुषी बहन संगीता आर्या, वरिष्ठ भजनोपदेशक श्री सहदेव बेधड़क, सुंदरलाल जी व क्षेत्रीय विद्वानों ने इस ज्ञान गंगा को ज्ञान सागर बनाकर समारोह को चार चांद लगा दिए। आचार्य रामकिशन शास्त्री जी ने कुशलता पूर्वक मंच का संचालन किया।

आर्यसमाज सुन्दर नगर कालोनी हिमाचल प्रदेश का वार्षिक उत्सव 8 अक्तूबर को प्रारम्भ हुआ। इस कार्यक्रम में यज्ञ, भजन और प्रवचनों के आयोजन हो रहे हैं। आचार्य रामफल सिंह जी आर्य के सान्निध्य में आर्यसमाज के पदाधिकारियों ने ध्वजारोहण किया और आचार्य जी का स्वागत किया। (कार्यालय संवाददाता)

स्व. माता श्रीमती तारावती जी की पुण्य तिथि 6 अक्तूबर को श्री सुभाष श्योराण के आवास पर सहदेव शास्त्री के ब्रह्मत्त्व में यज्ञ करके मनाई गई। सभी परिवारजनों सहित श्री विजयकुमार आर्य आर्यसमाज नांगल राया का सान्निध्य रहा।

5 अक्तूबर, सैक्टर 7 जींद में प्रो. पूनम भनवाला जी के गृह पर आचार्या सत्यसुधा शास्त्री गृह प्रवेश यज्ञ कराया गया।

स्वामी श्रद्धानंद व पंडित राम प्रसाद बिस्मिल के बलिदान की स्मृति में

कन्या भ्रूण हत्या, अंधविश्वास, पाखंड व नशाखोरी के खिलाफ

आर्य महासम्मेलन जींद

दिनांक 14 दिसंबर 2025 प्रातः 10 : 00 बजे

स्थान : महर्षि दयानंद योग चिकित्सा आश्रम, 3705, अर्बन एस्टेट जींद

अध्यक्षता : स्वामी आर्यवेश जी, प्रधान सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा नई दिल्ली

आर्य महासम्मेलन में आप इष्ट मित्रों व परिवार सहित सादर आमंत्रित हैं।

संयोजक : स्वामी रामवेश, प्रधान नशाबंदी समिति 8607301723 हरियाणा

आर्य के गौरव ठाकुर विक्रम सिंह जी के 83 वें जन्मोत्सव के उपलक्ष्य में

आर्य विद्वत् लेखक परिषद की द्वितीय चिंतन बैठक सम्पन्न

20 व 21 सितंबर 2025 (शनिवार, रविवार) वेद निधि ट्रस्ट तथा आर्य समाज ग्रेटर कैलाश, पार्ट-1 के संयुक्त तत्वावधान में आर्य विद्वत् लेखक परिषद की द्वितीय चिंतन बैठक आर्य समाज ग्रेटर कैलाश, पार्ट-2 में हुई जिसमें निम्नलिखित प्रमुख विद्वानों ने भाग लिया।

स्वामी प्रणवानंद सरस्वती, आचार्य गुरुकुल गौतम नगर

डॉ. महावीर मीमांसक, पूर्व प्रोफेसर, दिल्ली यूनिवर्सिटी

डॉ. ज्वलंत कुमार शास्त्री, अमेठी

डॉ. नरेश धीमान, अध्यक्ष, दयानंद चेयर, अजमेर यूनिवर्सिटी

डॉ. सुरेंद्र कुमार, पूर्व वाइस चांसलर, गुरुकुल कांगड़ी यूनिवर्सिटी, हरिद्वार

आचार्या नंदिता, कन्या गुरुकुल बनारस

डॉ. प्रीति वेद विमर्शिनी, कन्या गुरुकुल, बनारस

डॉ. धर्मेंद्र कुमार शास्त्री, प्रोफेसर, दिल्ली यूनिवर्सिटी

डॉ. विजयपाल प्रचेता,

आचार्य वैदिक उपदेशक विद्यालय, मंझावली

डॉ. प्रचेतस, प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, इलाहाबाद यूनिवर्सिटी

डॉ. भारद्वाज बरगई, प्रोफेसर, दयानंद चेयर, पंजाब यूनिवर्सिटी

डॉ. श्रीभगवान, अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, एमडी यूनिवर्सिटी,

डॉ. रघुवीर वेदालंकार

डॉ. राकेश कुमार आर्य, इतिहास विशेषज्ञ

आचार्य शिवकुमार शास्त्री, गुरुकुल महाविद्यालय, ततारपुर

यह कार्यक्रम तीन सत्रों में संपन्न हुआ। प्रथम सत्र में श्री राजेंद्र वर्मा, प्रधान, आर्य समाज, ग्रेटर कैलाश पार्ट-2, नई दिल्ली, द्वितीय सत्र में ठाकुर विक्रम सिंह, प्रसिद्ध आर्य नेता एवं तृतीय सत्र में श्री योगेश मुंजाल, प्रसिद्ध आर्य उद्योगपति ने कार्यक्रम की अध्यक्षता की। इस बैठक में निर्णय लिया गया कि महर्षि दयानंद द्वारा लिखित ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका का परवर्ती वेद भाष्यकारों/वैदिक विद्वानों/इतिहासकारों पर क्या प्रभाव हुआ, इस विषय पर रिसर्च करने की आवश्यकता है। साथ ही महर्षि दयानंद द्वारा वेद विषयक स्थापित मान्यताओं की पुष्टि एवं महत्व को भी सबके सामने लाना आवश्यक है। दो दिन के विचार-विमर्श के बाद निर्णय लिया गया कि इस कार्य को आर्य विद्वानों द्वारा प्राथमिकता के आधार पर पूरा किया जाएगा तथा इस ग्रंथ का प्रकाशन वेद निधि ट्रस्ट द्वारा किया जाएगा। इसी प्रकार आर्याभिविनय के 4 अलिखित प्रकरणों को ऋषि शैली में आर्य विद्वानों द्वारा पूर्ण कराकर प्रकाशित करने का निश्चय किया गया।

वेद निधि ट्रस्ट के माध्यम से आर्य विद्वत् लेखक परिषद की पहली बैठक 21 से 23 जून 2024 को गुरुकुल पौंधा, देहरादून में आयोजित की गई थी, जिसमें निर्णय लिया गया था कि आर्यसमाज की विचारधारा को विश्व में प्रचारित-प्रसारित करने के लिए एक उपदेशक विद्यालय की महती आवश्कता है जिसमें सुयोग्य उपदेशक तथा शास्त्रार्थ महारथी तैयार किए जा सकें। तदनुसार एक नया वैदिक उपदेशक विद्यालय गुरुकुल मंझावली परिसर में प्रारंभ किया गया है। इसका संचालन वेद निधि ट्रस्ट द्वारा किया जा रहा है। इस विद्यालय में लगभग 20 प्रबुद्ध छात्र हैं जिन्हें अष्टाध्यायी एवं धातु पाठ कंठस्थ हैं। वे डॉ. विजयपाल प्रचेता जी के निर्देशन में योग्य शिक्षा पा रहे हैं। इस बैठक के दौरान उपदेशक विद्यालय के छात्रों ने भी प्रश्नोत्तर रूप में आर्योद्देश्य रत्नमाला की चर्चा की तथा वेद मंत्रों की विभिन्न पाठों के रूप में प्रस्तुति दी।

सभी विद्वान् इस बात से प्रसन्न थे कि जो निर्णय लिया गया था वह कार्यान्वित कर दिया गया है। साथ ही अल्प से समय में ही छात्रों ने बहुत प्रगति की है। यह कार्यक्रम 21 सितंबर को दोपहर बाद इस संकल्प के साथ संपन्न हुआ कि सभी आर्य विद्वान् लिए गए निर्णय के अनुसार इस कार्य में सहयोगी बनेंगे तथा आर्थिक संसाधनों के बारे में वेद निधि ट्रस्ट व्यवस्था करेगा।

डॉ. आनंद कुमार IPS (R)
मंत्री वेद निधि ट्रस्ट
Phone : 9810764795

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक सहदेव द्वारा प्रियंका प्रिंटर्स, जींद के लिए आचार्य प्रिंटिंग प्रेस रोहतक से छपवाकर, कार्यालय शान्तिधर्मी ७५६/३, आदर्श नगर, सुभाष चौक (पटियाला चौक), जीन्द-१२६१०२ (हरि०) से प्रकाशित। सम्पादक : सहदेव

आर्यसमाज के गौरव ठाकुर विक्रम सिंह जी का 83वाँ जन्मोत्सव दिल्ली में मनाया गया।
इस अवसर पर शास्त्रार्थ एवं शुद्धि सम्मेलन का आयोजन किया गया।
इसी उपलक्ष्य में आर्य लेखक विद्वत् परिषद का अधिवेशन भी हुआ।

R.N.I. No. 70866/99 शान्तिधर्मी हिन्दी मासिक (अक्तूबर-नवम्बर २०२५) P.R. No. : PKL 150-A/2023-25